वासंती

भाग 1

कक्षा 11 (आधार पाठ्यक्रम) के लिए हिंदी की पाठ्यपुस्तक

संपादक
सत्येंद्र वर्मा

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण

सितंबर 2002

भाद्रपद 1924

PD 200T RP

ISBN 81-7450-012-X

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन सी ई आर टी कैम्पस -	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी डब्लू सी कैम्पस
श्री अरविंद मार्ग	हेली एक्सटेंशन बनाशकरी III इस्टेज	डाकघर नवजीवन	32, बी टी रोड, सुखचर
नई दिल्ली 110016	बैंगलूर 560085	अहमदाबाद 380014	24 परगना 743 179

प्रकाशन सहयोग

संपादन : राजपाल

उत्पादन : प्रमोद रावत

राजेन्द्र चौहान

आवरण : कल्याण बैनर्जी

रु. 27.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटर मार्क 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित ।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा आनन्द ब्रदर्स, सी-146, नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया फेज-I, नई दिल्ली 110 020 द्वारा मुद्रित।

आमुख

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के तत्वावधान में विद्यालयी स्तर पर विभिन्न शैक्षिक विषयों के लिए पाठ्यचर्या एवं तद्नुरूप पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों के निर्माण का कार्य लगभग चार दशकों से हो रहा है। इसी क्रम मे राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के लागू होने पर तर्द्निहित सिद्धांतों, सुझावों और उद्देश्यों के अनुसार उपयुक्त शिक्षण-सामग्री एवं पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया गया, जिनमें शिक्षा बाल-केंद्रित होगी एवं शिक्षार्थियों के सर्वांगीण विकास पर विशेष बल दिया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) मे यह सुझाव भी दिया गया कि कुछ समय के पश्चात् ज्ञान-विज्ञान के विकास, सामाजिक रचना और नवीन दृष्टिकोण तथा मूल्यपरक शैक्षिक आवश्यकताओं को देखते हुए पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों में यथावश्यक संशोधन और परिवर्तन अवश्य किया जाए। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए 'विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2000' का निर्माण हुआ। तत्पश्चात् नवीन पाठ्यचर्या में सुझाए गए नवीन उद्देश्यों, जीवन-मूल्यों, सूचना-संसाधनों एवं शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष की दृष्टि से अपेक्षित शैक्षिक बिंदुओं को समाहित करते हुए विविध विषयों का नवीन पाठ्यक्रम तैयार किया गया। तदनुसार नवीन पाठ्यपुस्तकों के निर्माण का कार्य हाथ में लिया गया। इसी श्रृंखला में ग्यारहवी कक्षा के आधार पाठ्यक्रम के लिए प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक 'वासंती' का प्रणयन किया गया है।

इस पाठ्यपुस्तक की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

1. ऐसी पाठ्यसामग्री एवं शैक्षिक क्रियाओ का समावेश जिनसे विद्यार्थियों मे राष्ट्रीय लक्ष्यों – जनतांत्रिकता, पंथ निरपेक्षता, समाजवाद, सामाजिक न्याय, समतावाद,

संवैधानिक दायित्वों, मूल कर्तव्यों तथा राष्ट्रीय एकता के प्रति चेतना एवं आस्था उत्पन्न हो सके और उनमें तर्कसंगत वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हो।

2. पाठ्यचर्या एवं पाठ्यसामग्री वर्तमान भारतीय जीवन-परिस्थितियों, समस्याओं (पर्यावरण, प्रदूषण, जनसंख्या विस्फोट आदि) तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश पर आधारित हों और उनमें वांछित भावी विकास की दिशा भी परिलक्षित हो।

3. पाठ्यपुस्तकें विद्यार्थियों के भावात्मक एवं बौद्धिक उत्कर्ष, चरित्र-निर्माण तथा स्वस्थ मनोवृत्ति के विकास की दृष्टि से प्रेरणादाई सिद्ध हों, उनके द्वारा बच्चों में अधिकाधिक ज्ञानार्जन की उत्कंठा जाग्रत हो और वे निर्धारित पाठ्यविषय तक ही सीमित न रह कर विशद एवं व्यापक अध्ययन के लिए जिज्ञासु तथा तत्पर बने रहें।

प्रस्तुत पुस्तक के निर्माण में हमे अनेक शिक्षाविदों, भाषाशास्त्रियो एवं अध्यापकों का सहयोग मिला है। मै उन सभी के प्रति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। जिन लेखकों और कवियों ने अपनी रचनाएँ इस पाठ्यपुस्तक में सम्मिलित किए जाने की अनुमति दी है, उनके प्रति मैं विशेष रूप से अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

इस पुस्तक के परिष्कार के लिए शिक्षाविदों, अध्यापको और विद्यार्थियों द्वारा व्यक्त प्रतिक्रियाओं और सुझावों का हम सदैव स्वागत करेंगे।

जगमोहन सिंह राजपूत

नई दिल्ली — *निदेशक*

अक्टूबर, 2001 — राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

संपादकीय

उपयुक्त पाठ्यक्रम का निर्धारण एवं तद्नुरूप पाठ्यपुस्तक की रचना राष्ट्रीय महत्त्व का कार्य है। राष्ट्रीय शैक्षिक योजना के क्रियान्वयन एवं शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ये मूल उपादान हैं। इस महत्त्व को दृष्टि में रखते हुए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के तत्वावधान में विद्यालय स्तर की शिक्षा के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रमो एवं पाठ्यपुस्तकों के प्रणयन का कार्य होता रहा है। पर यह कार्य एक सतत विकासशील प्रक्रिया है। बदलती हुई राष्ट्रीय परिस्थितियों, आवश्यकताओं, नूतन जीवन-मूल्यों तथा वांछित विकास की दिशाओ के अनुरूप इसमें संशोधन और परिवर्तन आवश्यक हो जाता है।

इसी परिप्रेक्ष्य में परिषद् ने सन 2000 में विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा का निर्माण किया। इस पाठ्यचर्या के आधार पर विविध विषयों के पाठ्यक्रम निर्धारित किए गए। उनके अनुसार परिषद् ने सभी विषयों की नवीन पाठ्यपुस्तकों के निर्माण का कार्य हाथ में लिया। इसी कार्यक्रम के अंतर्गत कक्षा ग्यारह के लिए 'आधार पाठ्यक्रम' के अनुसार हिंदी की यह पाठ्यपुस्तक 'वासंती' तैयार की गई है।

इस पाठ्यपुस्तक में दो खंड हैं-- गद्य खंड और पद्य खंड। गद्य खंड की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

1. पाठों के चयन में यह ध्यान रखा गया है कि इस स्तर के विद्यार्थियों को हिंदी गद्य की कुछ प्रमुख विधाओं (निबंध, ललित निबंध, व्यंग्य, संस्मरण, जीवनी, यात्रावृत्त, कहानी आदि) एवं शैलियों का परिचय प्राप्त हो जाए। इस दृष्टि से इन विधाओं के प्रतिनिधि साहित्यकारों की रचनाएँ इस पुस्तक में संग्रहीत हैं।

2. पाठों के चयन में इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है कि उनके द्वारा विद्यार्थियों में भाषिक एवं साहित्यिक क्षमता का विकास हो और उनकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का स्तर उन्नत हो।

3. पाठों के चयन में विषय-वस्तु, भाषा और शैली की विविधता, सरसता और रोचकता का भी पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। इनके अध्ययन से विद्यार्थियों को गद्य की विविध शैलीगत विशेषताओ से परिचित होने का अवसर मिलेगा और विषय-सामग्री के माध्यम से जीवन के अनेक पक्षों की झाँकी मिलेगी, जैसे चरित्र-निर्माण, वैज्ञानिक दृष्टि, राष्ट्रीय चेतना, सांप्रदायिक सद्भाव, मानवीय गुण आदि।

4. विद्यार्थियों के बौद्धिक स्तर एवं ग्रहणशीलता को ध्यान में रख कर पाठ्य-सामग्री का कहीं-कही आवश्यक संपादन भी किया गया है। किंतु ऐसा करते समय इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है कि रचना के मूल भाव एवं साहित्यिक सौष्ठव को कोई क्षति न पहुँचे।

पद्य-खंड की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

1. इस खंड में भक्ति काल के तीन कवियों तथा आधुनिक काल के नौ कवियों की कविताएँ संकलित हैं।

2. भक्तिकालीन कवियों में कबीर की काव्य-भाषा को साहित्य समीक्षकों ने 'सधुक्कडी' अथवा 'खिचड़ी' भाषा कहा है। सूर और रसखान की काव्य-भाषा ब्रजभाषा है। आधुनिक काल के कवियों की काव्य भाषा 'खड़ी बोली' हिंदी है। इन कविताओं के अध्ययन से विद्यार्थी हिंदी काव्य भाषा के इन तीनों रूपों से परिचित हो सकेंगे।

3. कविताओं के चयन में विद्यार्थियों के भाषा-ज्ञान, भाव बोध की क्षमता और रुचि की विविधता का ध्यान रखा गया है जिससे वे कविता के विविध रूपों से अवगत हो सकेंगे और उनकी सराहना कर सकेंगे।

4. संकलित कविताओं के अध्ययन से विद्यार्थी आधुनिक हिंदी काव्य की विविध शैलियों और प्रवृत्तियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

5. आधुनिक हिंदी कविता के विकास क्रम को ध्यान मे रखते हुए राष्ट्रीय और सांस्कृतिक जागरण, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता के प्रमुख कवियों की रचनाएँ संकलित की गई है।

6. आधुनिक हिंदी कविता को समझने ओर उसके सौंदर्य-तत्त्वों के बोध की दृष्टि से इस खंड की भूमिका (कविता का अध्ययन ओर अध्यापन) मे प्रकाश डाला गया है। इससे कविता के अध्ययन मे विद्यार्थियो को विशेष सहायता मिलेगी।

दोनों खंडों में प्रत्येक पाठ के अंत मे उससे संबंधित प्रश्न और अभ्यास तथा कठिन अंशों को बोधगम्य बनाने की दृष्टि से शब्दार्थ और टिप्पणी दी गई है। इनसे विद्यार्थियों में विषयवस्तु की व्याख्या, विवेचना, सराहना तथा उन पर स्वतंत्र रूप से विचार करने की योग्यता का विकास होगा।

उल्लेखनीय है कि यदि पाठों का शिक्षण सत्रवार (सेमेस्टर) किया जाना हो तो पाठों के निम्नलिखित क्रम को अपनाया जा सकता है –

प्रथम सत्र -- (गद्य खंड) 1. सबके थे बापू 2. संत तुलसीदास 3. शरतचंद्र 4. दो नाक वाले लोग; (पद्य खंड) 5. कबीरदास 6. सूरदास 7. रसखान 8. मैथिलीशरण गुप्त 9. सुमित्रानंदन पंत तथा 10. रामकुमार वर्मा।

द्वितीय सत्र - (गद्य खंड) 1. बर्फ़ के दरिया में साथ-साथ 2. विजयोत्सव 3. दूब-धान 4. तारों की दुनिया में; (पद्य खंड) 5. बालकृष्ण राव 6. भवानी प्रसाद मिश्र 7. नागार्जुन 8. अज्ञेय 9. केदारनाथ सिंह तथा 10. दुष्यंत कुमार।

इस पुस्तक के निर्माण में हमें अनेक शिक्षाविदों और भाषाशास्त्रियों का सहयोग मिला है। इसके लिए हम उनके आभारी हैं। परिषद् के सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग के अध्यक्ष तथा हिंदी पाठ्यपुस्तका के प्रणयन से संबंधित सदस्यों का हमें जो अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है, उसके लिए हम उनके प्रति कृतज्ञ है।

हिंदी भाषा का स्तर ऊँचा करने तथा विद्यार्थियों में साहित्यिक अभिरुचि का विकास करने में यदि इस पुस्तक का योगदान हो सका तो हम अपना श्रम सार्थक समझेंगे।

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ :

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा ? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा ? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है ?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

मो० क० गांधी

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

प्रो. सत्येंद्र वर्मा *(संयोजक)* प्रो. सुरेश चंद्र पाण्डेय डॉ स्नेह लता प्रसाद

सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

पांडुलिपि समीक्षा-संशोधन कार्यगोष्ठी के सदस्य

1. पं. विद्यानिवास मिश्र
   अवकाश प्राप्त कुलपति
   संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय
   वाराणसी, उ.प्र.
2. श्री निरंजन कुमार सिंह
   अवकाश प्राप्त रीडर
   सा.वि.मा.शि.वि.
   एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली
3. प्रो. माणिक गोविंद चतुर्वेदी
   अवकाश प्राप्त प्रोफ़ेसर
   केंद्रीय हिंदी संस्थान, 'सूर्यमुखी'
   श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली
4. डॉ. आनद प्रकाश व्यास
   अवकाश प्राप्त रीडर
   शिक्षा विभाग
   दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
5. डॉ. कृष्ण कुमार गोस्वामी
   प्रोफ़ेसर
   केंद्रीय हिंदी संस्थान, 'सूर्यमुखी'
   श्री अरविद मार्ग, नई दिल्ली
6. डॉ. मान सिंह वर्मा
   अध्यक्ष, हिंदी विभाग
   मेरठ कॉलेज, मेरठ, उत्तर प्रदेश
7. श्री लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय'
   अवकाश प्राप्त उपनिदेशक
   सूचना एवं जनसंपर्क विभाग
   उ.प्र. शासन, लखनऊ
8. कु. नीरा नारंग
   वरिष्ठ प्रवक्ता
   शिक्षा विभाग
   दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
9. डॉ. रामकरण डबास
   वरिष्ठ प्रवक्ता
   राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
   नई दिल्ली
10. श्री प्रभाकर द्विवेदी
   अवकाश प्राप्त मुख्य संपादक
   प्रकाशन विभाग
   एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली
11. श्री लोकेंद्र चतुर्वेदी
   प्राचार्य
   शासकीय विद्यालय
   कनाडिया, इदौर, म.प्र.
12. श्री अमर गोस्वामी
   लेखक, एफ-12, सेक्टर-12,
   नोएडा, गौतमबुद्ध नगर, उ.प्र.
13. श्री विश्वनाथ सिह
   अवकाश प्राप्त अध्यक्ष
   पाठ्यपुस्तक निर्माण् विभाग
   साक्षरता निकेतन, लखनऊ, उ.प्र.
14. डॉ. सुरेश पंत
   अवकाश प्राप्त प्रवक्ता
   राजकीय उच्चतर माध्यमिक बाल विद्यालय
   जनकपुरी, नई दिल्ली
15. कु. कुसुम लता अग्रवाल
   हिंदी अध्यापिका
   सर्वोदय बाल विद्यालय, रमेश नगर
   नई दिल्ली
16. कुमारी इंद्रा सक्सेना
   वरिष्ठ हिंदी अध्यापिका
   डी.एम.स्कूल, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान
   एन.सी.ई.आर.टी., अजमेर, राजस्थान
17. कु. विमला उप्रेती
   अवकाश प्राप्त प्रधानाध्यापिका
   राजकीय इंटर कॉलेज
   लखनऊ, उ.प्र.
18. श्रीमती लक्ष्मी मुकुंद
   वरिष्ठ हिंदी अध्यापिका
   डी.टी.ई ए. स्कूल, सेक्टर-4
   आर के.पुरम, नई दिल्ली

वसुधैव कुटुंबकम्

(वेद की ऋचाओं से रूपांतर)

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।।2।।

पूर्व काल के देव कि जैसे
एक-दूसरे के हित का आचार पालते,
साथ जानते हुए भाग्य का लाभ उठाते,
उसी भाँति तुम अपनी वाणी-
मन-विचार को करो संगठित !

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।3।।

अभिमंत्रित करता मैं तुम्हें समान मंत्र से,
और एक ही हवि से करता हवन तुम्हारा।
समिति एक हो तुम सब की, हो समझ एक सम
एक साथ हो गमन और आगमन तुम्हारा
करो लक्ष्य के लिए चित्त-मन सब संकल्पित!

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।4।।

तुम सब की कल्पना एक हो,
हृदय एक हों मन समान हो,
जिससे उपजे सुंदर सम्मति,
सह-अस्तित्व-भावना जग में प्रवहमान हो !

रूपांतरकार बशीर अहमद 'मयूख'

पाठ-सूची

पद्य खंड

गद्य खंड

गद्य का अध्ययन और अध्यापन

प्रस्तुत संकलन मे ऐसे गद्य पाठों का चयन किया गया है जिनके माध्यम से विद्यार्थी हिंदी गद्य साहित्य में विकसित विविध विधाओं ओर शैलियों से परिचित हो सकें। अतः इन पाठों को द्रुत-पठन की भाँति न पढ़कर इनके गहन अध्ययन-अध्यापन की आवश्यकता है।

हिंदी गद्य साहित्य में अनेक विधाओं का विकास हुआ है जिनमें कहानी, उपन्यास एकांकी और नाटक के अतिरिक्त निम्नांकित विधाएँ उल्लेखनीय हैं :

निबंध, ललित निबंध, व्यंग्य, यात्रा-वृत्तांत, जीवनी, आत्मकथा, गद्यगीत, पत्र-साहित्य, संस्मरण, भेंटवार्ता, डायरी, रेखाचित्र तथा रिपोर्ताज़ आदि।

संकलित गद्य पाठों में दो निबंध (संत तुलसीदास और तारों की दुनिया में), एक ललित निबंध (विजयोत्सव), एक व्यंग्य (दो नाक वाले लोग), एक यात्रा वृत्तांत (बर्फ़ के दरिया में साथ-साथ), एक जीवनी (शरत्चंद्र), एक संस्मरण (सबके थे बापू), एक कहानी (दूब-धान)—कुल आठ पाठ रखे गए हैं।

संकलित पाठों के अध्ययन द्वारा पठन-योग्यता की प्राप्ति तथा विभिन्न विषयों की श्रेष्ठ पुस्तकें पढ़ने में रुचि उत्पन्न करना है। इन पाठों का मुख्य लक्ष्य है—स्तरीय सामग्री पढ़कर विद्यार्थी उसका अर्थ ग्रहण करने के साथ उसके साहित्यिक सौंदर्य की अनुभूति कर सके। समुचित पठन-योग्यता के लिए श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियों एवं उसके लेखकों से परिचित होना आवश्यक है। विभिन्न विषयों पर आधारित ज्ञानात्मक सामग्री का अध्ययन भी उतना ही आवश्यक है। इस प्रकार विषय की जानकारी के साथ उसकी शब्दावली से भी परिचय

मिलता है। इन विभिन्न बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए हिंदी के सुप्रसिद्‌ध लेखकों की विभिन्न विषयों और विधाओं से संबंधित सामग्री का चयन किया गया है।

पाठ्‌य सामग्री गहन और विशद अध्ययन के लिए है, आवश्यकतानुसार उसे बार-बार पढ़ा जाए और तदुपरांत उस पर विचार किया जाए। परंतु अन्य सामग्री पढ़े बिना पठन-कार्य पूरा नहीं समझना चाहिए। गद्‌य पाठों का उद्‌देश्य पठन योग्यता की प्राप्ति है। पठन योग्यता का संबंध गद्‌य साहित्य से अधिक होता है। जहाँ गद्‌य का उद्‌देश्य वस्तु बोध कराना है वहीं कविता का उद्‌देश्य भाव सौंदर्य की अनुभूति।

गद्‌य में युक्ति और तर्क से लेखक अपनी बात कहता है, वाक्यों में विषय-प्रतिपादन की क्रमबद्‌धता रहती है। कुछ वाक्य-समूहों के एक अनुच्छेद में विषय के एक अंग का वर्णन होता है और सभी अनुच्छेद एक विषय-सूत्र में गुँथे रहते है। ये अनुच्छेद विषय को समझने और हृदयंगम करने में सहायक होते हैं।

विधागत साहित्यिक विशेषताएँ भिन्न होते हुए भी इन पाठों में अर्थबोध की दृष्टि से कुछ बातें समान रूप से लागू होती हैं :

1. मुख्य भाव ग्रहण करना।
2. पाठ्‌य सामग्री का अर्थ ग्रहण करना।
3. प्रसंग द्‌वारा शब्दों का अर्थ समझना।
4. मुहावरे तथा लोकोक्तियों आदि में व्यक्त भाव का अर्थसूत्र में संबंध निर्वाह करना।
5. वाक्य विशेष के प्रयोगों का अर्थ समझना।
6. समास-विग्रह, संधिविच्छेद करके शब्दार्थ निकालना।
7. स्थल विशेष के अभिधार्थ के साथ उसके लक्ष्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ को समझना।
8. अनुच्छेदों का सार बनाना और उसका शीर्षक देना।
9. पाठ का सारांश बताना।
10. शैलीगत विविधता समझना।
11. पाठ्‌यसामग्री का मूल्यांकन करना।

अर्थबोध पठन-क्रिया का मुख्य अंग है। पूर्वज्ञान, शब्द भंडार, विचारों का विश्लेषण-संश्लेषण एवं पठन-गति पर अर्थग्रहण होता है। अच्छा पाठक पठित अंश का अर्थ तत्काल ग्रहण करता चलता है, अनावश्यक अंशों को छोड़कर आवश्यक अंशों का स्मरण करता है तथा पूरे पाठ का मुख्य भाव समझ लेता है। शिक्षण का अन्य प्रमुख उद्‌देश्य शब्द भंडार की वृद्‌धि है। शिक्षण के समय यथाप्रसंग पर्यायवाची, विलोम, अनेकार्थी शब्दों का ज्ञान कराना आवश्यक है। शब्द रचना (संधि, समास, उपसर्ग, प्रत्यय द्‌वारा) से भी विद्‌यार्थियों को परिचित होना चाहिए। शब्द भंडार की वृद्‌धि की दृष्टि से कोश का प्रयोग आवश्यक है, कोश के प्रयोग पर भी यथासंभव पर्याप्त बल देना चाहिए।

पठन दो प्रकार का होता है— मौन और सस्वर। मौन पठन स्वयं अर्थ समझने के लिए होता है और सस्वर पठन पढ़ी जाती हुई सामग्री को अन्य व्यक्तियों को सुनाने व समझाने के लिए। मौन पठन की आवश्यकता अधिक होती है क्योंकि यह ज्ञानार्जन का मुख्य माध्यम और साधन है। मौन पठन में जितनी अधिक गति हो वही अच्छा है। परंतु सस्वर पठन की गति वही होनी चाहिए जो सामान्य बातचीत में रहती है। इसमें उच्चारण की शुद्‌धता, स्पष्टता तथा अर्थ और भाव के अनुसार वाणी का उतार-चढ़ाव आवश्यक है।

पाठ-शिक्षण के समय अध्यापक को पाठ्‌य बिंदुओं का निश्चय पहले से कर लेना चाहिए। किन तथ्यों पर अधिक बल देना है और कौन से स्थल अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, किन अंशों की व्याख्या करनी है तथा किन संदर्भों को देना है आदि का निश्चय कक्षा शिक्षण के पहले ही कर लेना चाहिए। इस स्तर पर यह भी आवश्यक है कि विद्‌यार्थी आरंभ में ही लेखक से कुछ परिचित हो जाए और वे नवीन विषयवस्तु को ग्रहण करने की मानसिक स्थिति में आ जाए। पाठ-शिक्षण में विद्‌यार्थियों के पूर्व अर्जित ज्ञान एवं अनुभव का पूरा उपयोग किया जाना चाहिए।

ध्यातव्य है कि गद्‌य-शिक्षण द्‌वारा विद्‌यार्थियों में विकसित की जाने वाली कुछ योग्यताओं और दक्षताओं का उल्लेख ऊपर किया गया है यथा – अर्थबोध की क्षमता

शब्द-भंडार की वृद्धि, तीव्र पठन गति, आलोचनात्मक अध्ययन, रचनात्मक प्रवृत्ति एवं अपने भावों और विचारों को व्यक्त करने की अपनी शैली का निर्माण। इन योग्यताओं का विकास सभी प्रकार के गद्य पाठों के माध्यम से अपेक्षित है चाहे वे पाठ किसी भी विधा में हों। फिर भी हमें ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक विधा की अपनी साहित्यिक विशेषताएँ होती हैं जो उनकी पृथक पहचान कराती हैं। इस कारण उनके अध्ययन-अध्यापन में भी कुछ अंतर आ जाता है। इस दृष्टि से प्रत्येक विधा से संबंधित पाठों के अध्ययन-अध्यापन पर संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है।

निबंध

निबंध गद्य साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा है। इसका महत्त्व आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है— 'यदि गद्य लेखकों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबंधों में ही सबसे अधिक संभव होता है। इसीलिए गद्य शैली के विवेचक उदाहरणों के लिए निबंध को ही चुना करते हैं।' भाषा के शुद्ध, प्रांजल और परिनिष्ठित रूप का ज्ञान निबंध साहित्य के द्वारा अधिक संभव है। भाषा अध्ययन के इन बिंदुओं पर हमें विशेष ध्यान रखना चाहिए।

निबंध शब्द के शाब्दिक अर्थ से भी यही ध्वनित होता है। निबंध शब्द का अर्थ है— सम्यक् रूप से बँधी अथवा कसी रचना। इसका अशय यह है कि निबंध में विचार अथवा भाव पूर्णतः एक सूत्र में बँधे हुए रहते हैं। किंतु साहित्यिक जगत में इसका प्रयोग एक ऐसी गद्य रचना के लिए रूढ़ हो गया है जिसमें लेखक का व्यक्तित्व किसी न किसी रूप में अवश्य प्रतिबिंबित हो। लेखक स्वच्छंदतापूर्वक अपने मन की बात निबंध के माध्यम से कह सकता है। विधि, विषय या विचार के बंधन से मुक्त रहता है। हमें निबंध के अध्ययन-अध्यापन में स्थल विशेष की ओर विद्यार्थियों का ध्यान आकृष्ट करना चाहिए। व्यक्तित्व की व्यंजना का सामान्य रूप से यह आशय लिया जाता है कि किसी विषय या विचार के संबंध में निबंधकार का निजी मत, प्रतिक्रिया, धारणा, रुचि-अरुचि आदि की झलक मिलती है। कक्षा-शिक्षण में अगले पृष्ठ पर दिया गया क्रम अपनाया जा सकता है :

1. पाठ की प्रस्तावना।
2. मौन पठन।
3. भाषा अध्ययन (शब्दार्थ, शब्द रचना, विशिष्ट शब्द एवं वाक्य-प्रयोग, मुहावरे, लोकोक्तियों आदि का परिचय)।
4. विषय-वस्तु विश्लेषण (इसके अंतर्गत पाठ में आए हुए भाव, विचार, तथ्य, सिद्धांत तथा दृष्टांत आदि का विवेचन और स्पष्टीकरण)।
5. मूल्यांकन (पाठ के अंशों का अर्थबोध, विषय-वस्तु विश्लेषण और भाषा अध्ययन संबंधी योग्यताओं का प्रश्नों द्वारा परीक्षण)।

इस संकलन में दो निबंध हैं– 'संत तुलसीदास' (समीक्षात्मक निबंध) तथा 'तारों की दुनिया में' (विज्ञान विषयक निबंध)। इनके अध्ययन-अध्यापन में उपर्युक्त विधि का प्रयोग कर सकते हैं।

ललित निबंध, व्यंग्य, यात्रा-वृत्तांत

हिंदी में निबंध के ही रूप में एक नई विधा 'ललित निबंध' नाम से विकसित हुई है। इस विधा की विशेषता है– तथ्य, घटना, क्रिया-व्यापार आदि का भावोन्मेषकारी चित्रण। इस विधा के निबंध की भाषा-शैली बहुत कुछ भाव प्रधान निबंधों की भाषा-शैली के समान ही होती है। हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, विवेकी राय आदि ऐसे निबंधों के प्रमुख लेखक हैं। इनके ललित निबंधों में सांस्कृतिक विषयों का चित्रण बड़ा प्रभावकारी हुआ है। इस संकलन में 'विजयोत्सव' ललित निबंध का अच्छा उदाहरण है।

व्यंग्यात्मक निबंध भी निबंध की ही कोटि में आते हैं किंतु उनमें किसी वर्तमान व्यवस्था, स्थिति,समस्या आदि के प्रति व्यंग्य की प्रधानता होती है। अन्नपूर्णानंद वर्मा, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवींद्रनाथ त्यागी, श्रीलाल शुक्ल, गोपाल चतुर्वेदी आदि इस विधा के प्रमुख निबंधकार हैं। इस संकलन में 'दो नाक वाले लोग' व्यंग्य विधा के उदाहरण के रूप में रखा गया है।

किमी भी प्रकार की यात्रा के विविध अनुभवों और प्रतिक्रियाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति को यात्रा वृत्तांत कहते हैं। यद्यपि यात्रा वृत्तांत में वर्णनात्मक निबंध और संस्मरण दोनों के ही कुछ-कुछ तत्त्व पाए जाते हैं, किंतु यह इन दोनों विधाओं से भिन्न विधा है। घटनाक्रम की गतिशीलता, मार्ग में आने वाली अप्रत्याशित परिस्थितियों की रोमांचकता, कठिनाइयों का सामना करने की साहसिकता आदि यात्रा वृत्तांत में यात्री के प्रस्थान मार्ग एवं गंतव्य से संबंधित भौगोलिक एवं प्राकृतिक चित्रण के साथ-साथ यथाप्रसंग वहाँ की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन की झलक भी प्रस्तुत की जाती है। यात्रा के संपूर्ण वर्णन में लेखक की मानसिक प्रतिक्रियाएँ और धारणाएँ भी व्यंजित होती चलती हैं। इस संकलन में 'बर्फ़ के दरिया में साथ-साथ' यात्रा वृत्तांत को उदाहरण रूप में रखा गया है।

ललित निबंध, व्यंग्य और यात्रा वृत्तांत की अध्ययन-अध्यापन विधि बहुत कुछ निबंध-शिक्षण के ही समान है। इनके शिक्षण में पाठ-विकास का वही क्रम अपनाया जा सकता है जिसका उल्लेख निबंध के अंतर्गत किया जा चुका है। दो शिक्षण-बिंदुओं में कुछ अंतर रखना पड़ता है– (1) निबंध में भाषा-अध्ययन का जितना विस्तार अपेक्षित है, उतना विस्तार इनमें नहीं किया जाता। केवल शब्दार्थ और व्याख्या संबंधी कठिनाई दूर कर दी जाती है। (2) विषय-वस्तु विश्लेषण में इन निबंधों की प्रकृति, तथ्य और रमणीयता का ध्यान रखना पड़ता है और उनसे संबंधित प्रश्नों के द्वारा लालित्य, व्यंग्य और यात्रा की रोमांचकता को उभारा जाता है।

जीवनी और संस्मरण

जीवनी में किसी महापुरुष के जीवन की उन घटनाओं का उल्लेख किया जाता है जिनसे उनके असाधारण चरित्र और स्वभाव पर प्रकाश पड़ता है। जीवनी इतिहास नही है, अपितु उसमें महापुरुष के जीवन के कुछ असाधारण प्रसंगों द्वारा उसके चरित्र को उभारने का प्रयास किया जाता है। इस संकलन में 'शरत्चंद्र' पाठ जीवनी का एक अच्छा उदाहरण है।

लेखक के स्मृति पटल पर अंकित किसी विशेष व्यक्ति के जीवन की कुछ घटनाओं का रोचक और प्रेरक विवरण संस्मरण कहलाता है। इसमें लेखक केवल उसी बात का वर्णन

करता है जिसे उसने स्वयं देखा या अनुभव किया है। संस्मरण निकट से देखे हुए व्यक्तियों से संबंधित होता है अतः इसका विवरण विश्वसनीय होता है। प्रस्तुत संकलन में 'सबके थे बापू' पाठ संस्मरण विधा का एक अच्छा उदाहरण है।

इन दोनों विधाओं से संबंधित पाठों की अध्ययन-अध्यापन विधि बहुत कुछ निबंध शिक्षण के समान ही होती है और पाठ विकास का वही क्रम अपनाया जा सकता है। किंतु इन पाठों में भाषा-अध्ययन की उतनी गहराई और विस्तार में नहीं जाते जितनी निबंधों में। केवल शब्दार्थ और व्याख्या संबंधी कठिनाई दूर करने तक ही सीमित रहते हैं। जीवनी के पाठों में विषय-वस्तु विश्लेषण के अंतर्गत महापुरुषों के असाधारण उदात्त चरित्र और महत् कार्यों पर प्रकाश डाला जाता है। संस्मरण के पाठों में जिस व्यक्ति के संबंध में संस्मरण लिखा गया है, उसकी विविध परिस्थितियों में महानता का चित्रण किया जाता है।

कहानी

कहानी के संदर्भ में प्रेमचंद का निम्न कथन दृष्टव्य है– "गल्प (कहानी) एक ऐसी रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अंग या एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य होता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथानक उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं। उपन्यास की भांति उसमें मानव जीवन का संपूर्ण तथा वृहद् रूप दिखाने का प्रयास नही किया जाता और न उसमें उपन्यास की भाँति सभी रसों का समावेश होता है। वह एक ऐसा रमणीय उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँति के फूल, बेल-बूटे सजे हुए हैं बल्कि वह एक ऐसा गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।"

कहानी में जीवन के किसी एक अंग अथवा मनोभाव का चित्रण होता है। अतः कहानी पढ़ाते समय उस अंग या मनोभाव की ओर विशेष रूप में विद्यार्थियों का ध्यान आकृष्ट करना चाहिए। कहानी बहुत ही लोकप्रिय विधा है। विद्यार्थी पुस्तक में संकलित कहानी स्वयं ही पढ़ लेते हैं। अतः कक्षा-शिक्षण में उनके कहानी संबंधी पूर्व परिचय का लाभ उठाना चाहिए। मूलतः कहानी का आनंद उसके कहने और सुनने में है। अतः कक्षा में पहले शिक्षक द्वारा

कहानी सुनाई जाए फिर एक-एक अंश के रूप में विद्यार्थियों से सुनी जाए। तदुपरांत कहानी के तत्त्वों का विश्लेषण किया जाए।

कहानी में निम्नलिखित तत्त्व न्यूनाधिक मात्रा में अवश्य विद्यमान रहते हैं। इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि कक्षा में कहानी पढ़ी ही न जाए। कथानक के विकास, चरित्र-चित्रण अथवा किसी स्थिति या वातावरण के संबंध में वर्णित मार्मिक स्थलों को कक्षा में आवश्यकतानुसार पढ़ा जाए, जिससे विद्यार्थियों को तत्संबंधी साहित्यिक सौंदर्य का बोध हो सके।

कहानी के तत्त्वों– कथानक, चरित्र, कथोपकथन, वातावरण, उद्देश्य, भाषा-शैली में से किसी तत्त्व की प्रधानता के आधार पर कहानियों का वर्गीकरण किया जाता है यथा– घटना प्रधान कहानी, चरित्र प्रधान कहानी, वातावरण प्रधान कहानी आदि। कहानी में जिस तत्त्व की प्रधानता हो, शिक्षण में उस पर विशेष प्रकाश डालना चाहिए। इस संकलन में रखी गई कहानी 'दूब-धान' बदलते हुए सामाजिक परिवेश, जीवन शैली और मानवीय संबंधों पर आधारित है। बिहार की आंचलिक पृष्ठभूमि से जुड़ी हुई यह एक हृदयस्पर्शी-मार्मिक कहानी है। इस कहानी के कथानक के माध्यम से महानगरीय औपचारिकता और ग्रामीण उन्मुक्तता को सरल-सहज ढंग से प्रस्तुत किया गया है। साथ ही इस कहानी से जो संदेश मिलता है उसकी भी चर्चा करनी चाहिए।

अध्ययन-अध्यापन के संदर्भ में यह ध्यान में रखने की बात है कि शिक्षण की विधि यांत्रिक नहीं होनी चाहिए। यह बहुत कुछ पाठ की प्रकृति, विषय-वस्तु की प्रस्तुति, संयोजन, शैली आदि पर निर्भर करता है कि हम किस विधि को अपनाएँ। जिस विधि से वर्णनात्मक निबंध पढ़ाया जाएगा, उसी विधि से समीक्षात्मक निबंध नहीं पढ़ाया जा सकता। किसी निबंध में तथ्यों और घटनाओं पर बल रहता है तो किसी में मनोभावों और शैलीगत विशेषताओं पर। इसी प्रकार संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत, जीवनी आदि के पाठों में भी पाठ की प्रकृति के अनुसार ही उपयुक्त विधि अपनानी चाहिए। उपयुक्त विधि का निर्वाचन बहुत कुछ शिक्षक के अपने विवेक पर निर्भर करता है।

भदंत आनंद कौसल्यायन

भदंत आनंद कौसल्यायन का जन्म सन 1905 में अंबाला जिले के सोहाना गाँव में हुआ। वे बौद्ध भिक्षु थे और उन्होंने देश-विदेश का काफ़ी भ्रमण किया। बौद्ध भिक्षु के रूप में उनका कार्य सराहनीय रहा है। हिंदी भाषा और साहित्य की सेवा में भी उनका उल्लेखनीय योगदान है। उन्होंने हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के माध्यम से और बाद में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के सचिव के पद पर रहकर हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

पर्यटन तथा संगठन के कार्यों में रुचि रहने के कारण कौसल्यायन का अनुभव गहन और विस्तृत था जो उनकी रचनाओं में परिलक्षित होता है। उनकी बीस से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उन्होंने महत्त्वपूर्ण बौद्ध ग्रंथों तथा जातक कथाओं का पाली भाषा से हिंदी में अनुवाद किया है। उनके लिखे हुए रेखाचित्र विशेष प्रसिद्ध हैं। पर्यटक होने के कारण उनके यात्रा-वृत्तांतों में स्थानों और दृश्यों का मनोरम चित्रण मिलता है।

कौसल्यायन गांधी जी के साथ लंबे अरसे तक वर्धा में रहे। गांधी जी के सिद्धांतों और जीवन-शैली से वे अत्यधिक प्रभावित थे। उनके लिखे हुए गांधी जी विषयक संस्मरणों में गांधी जी के जीवन का यथार्थ रूप बड़े ही सहज ढंग से उभर कर सामने आ जाता है। ***भिक्षु के पत्र, जो न भूल सका, आह! ऐसी दरिद्रता, बहाने बाजी*** *आदि उनकी रचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।*

प्रस्तुत पाठ ***सबके थे बापू*** *कौसल्यायन जी के बहाने बाजी नामक रचना-संग्रह से लिया गया है। इसमें उन्होंने गांधी जी के साथ बिताए गए क्षणों की एक झाँकी प्रस्तुत की है। इसके*

द्वारा गांधी जी की मानवता, शालीनता, प्राणिमात्र के प्रति आत्मीयता, सभी प्रकार के भेदभावों से ऊपर उठकर सबके प्रति उनका समान व्यवहार आदि मानवीय गुणों का हृदयग्राही वर्णन किया गया है। इन्ही गुणों के कारण बापू सबके थे और सब बापू के थे।

सबके थे बापू

अभी 26 जनवरी को ही हमने अपने स्वतंत्रता दिवस की, अपने सर्वप्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्र राज्य के स्थापना-दिवस की वर्षगाँठ मनाई। उस दिन की, जिस दिन भारत ने स्वतंत्र होने की दृढ़ प्रतिज्ञा की और जिस दिन भारत ने अपने सर्वप्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्र राज्य होने की घोषणा की।

और, फिर चार ही दिन बाद हमने अपने बापू की बरसी मनाई, उस बापू की जिसने हमसे स्वतंत्रता की शपथ लिवाई, जिसने हमें स्वतंत्रता दिलाई।

आज हम हैं, हमारी स्वतंत्रता भी है, किंतु हमारा बापू नहीं है ....

30 जनवरी की मनहूस संध्या को मैं बनारस स्टेशन पर रेल से उतरा ही था कि वहीं बापू के निधन का समाचार मिला। वह समाचार था कि जंगल की आग थी – दहकती, लहकती चारों ओर बढ़ी चली जा रही थी। जो लोग इक्कों, ताँगों और रिक्शों पर बैठ चुके थे, वे सभी इक्के, ताँगे और रिक्शे छोड़-छोड़ कर पैदल चलने लगे।

सामान्य लोगों का निधन होता है तो उनके संबंधी ही रोते हैं। बापू का निधन हुआ तो उनके संबंधी-असंबंधी सभी रोए। देवदास गांधी से भी अधिक ऐसे लोग रोए, जिन्होंने कभी बापू को देखा तक नहीं था। और लोगों का निधन होता है तो उनके प्रशंसक ही रोते हैं, बापू का निधन हुआ तो उनके आलोचक ही नहीं निंदक भी रोए। और लोगों का निधन होता है तो उनके अपने धर्म वाले ही रोते हैं, बापू का निधन हुआ तो हिंदू-मुसलमान सभी रोए, छाती

पीट-पीट कर रोए। और लोगों का निधन होता है तो उनके देशवाले ही रोते हैं, बापू का निधन हुआ तो वे अंग्रेज़ भी रोए, जिनकी सरकार को बापू ने 'शैतानी सरकार' कहा था।

ये सभी क्यों रोए? और इतना अधिक क्यों रोए ? क्योंकि 'बापू' मानवता के धनी थे।

हर दो हाथ, दो पैर वाले पशु को हम आदमी समझने की गलती करते हैं – 'मानव' मान लेते हैं। हर दो हाथ, दो पैर वाला पशु मानव नहीं होता। स्वामी रामतीर्थ ने आदमियों के चार प्रकार बताए हैं, 1. जड़-मानव, 2.वनस्पति-मानव, 3. पशु-मानव और 4. मानव-मानव।

जो व्यक्ति केवल अपनी ही चिंता करता है, अपने से बाहर कुछ सोच ही नहीं सकता, वह 'जड़-मानव' है। जो अपने साथ अपने परिवार वालों, अपने नगरवालों की भी चिंता करता है, वह 'वनस्पति-मानव' है। जो अपने साथ अपने परिवार और नगर के लोगों के साथ-साथ, देश भर के लोगों की भी चिंता करता है, वह 'पशु-मानव' है। जो अपने साथ अपने परिवार और नगर के लोगों तथा अपने देश के साथ-साथ 'मानवमात्र' की ही नहीं 'प्राणिमात्र' की भी चिंता करता है, वही मानव-मानव है। मौलाना हाली का शेर है –

फ़रिश्ते से बेहतर है इंसान बनना,
मगर उसमें पड़ती है मेहनत ज़्यादा।

जो लोग बापू की राजनीति से सहमत नहीं रहे अथवा मेरी तरह जो राजनीति को विशेष समझते भी नहीं रहे, वैसे लोगों पर भी बापू की 'शालीनता', बापू की 'मानवता' जादू का असर करती थी। मेरी ही एक दिन की आपबीती सुनिए –

6 दिसंबर सन 45 की शाम को मैं बापू की व्यस्तता का ख्याल कर उनकी कुटिया के भीतर पैर रखने में हिचकिचा रहा था। आवाज़ सुनाई दी – "आइए, आइए !"

मैं भीतर चला गया।

"अब आप यहाँ रहने के लिए आए हैं। एक महीना, दो महीने, चार महीने, जितना रह सकें।"

"हाँ बापू, जितने दिन वर्धा में रहूँगा, यहीं रहने की कोशिश करूँगा।"

दो चार और बातें करने के अनंतर बापू बोले, "अच्छा तो भोजन की घंटी बज गई है। पहले जाकर भोजन कर लीजिए।"

सेवाग्राम में भोजन के समय भोजन न करने पर दूसरे दिन तक उसी प्रकार इंतज़ार करना पड़ता था, जैसे रेलगाड़ी छूट जाने पर फिर दूसरी गाड़ी का।

"भोजन तो मैं नही करूँगा बापू, थोड़ा दूध पी लूँगा।"

श्रीमन्नारायण जी को इशारा हो गया और मुझे उनके साथ वैसे ही जाना पड़ा जैसे किसी कैदी को सिपाही के साथ। यह थी प्रेम की कैद।

लौटा तो बापू को बुरी तरह व्यस्त पाया। एक के बाद दूसरी समस्या निबटाई जा रही थी। आपसी बात कहने का आग्रह रखने में अपना ही मन संकोच मानता था। तब डा. सुशीला नय्यर ने धीरे से सलाह दी, "बापू जी, अब जैसे भी हो मौन ले लें।"

"नहीं, वह तो नहीं हो सकता।"

"बापू ! स्ट्रेन बढ़ जाएगा।"

"जिनको समय दिया जा चुका है, उनको समय देना तो धर्म है, वह कैसे तोड़ा जा सकता है ?"

दया आती थी– अभी रात दस बजे बाद तक समय बँधा हुआ है !

सैर को निकले तो श्रीमन्नारायण जी ने किसी तरह हिम्मत की और 'राष्ट्रभाषा' के विषय में जो बात मैं कहना चाहता था, वह अत्यंत संक्षेप में कह दी– अथवा उसकी भूमिका बाँध दी। मुझसे दो एक वाक्य कहकर बोले, "अब जाना नहीं होगा, यही रहना, नहीं तो मैं मुंबई (बंबई) से लौटकर लड़ूँगा।"

"बापू आप तो ऐसे मेजबान हैं कि अतिथि को घर पर छोड़कर स्वयं चले जाते हैं।"

बड़ी ज़ोर से खिलखिलाकर बोले, "हाँ मुझे ऐसा ही अतिथि चाहिए जो मेरी गैरहाज़िरी में घर को घर ही समझे।"

तब तक बापू को फिर मौन की याद कराई गई। मैंने कहा, "अब बापू, आप मौन रख लें।" उसके बाद किसी और ने कुछ कहना चाहा। झट मुँह पर उँगली चली गई। मेरे मुँह से निकला "बापू, मौन वाणी का ही है न, कुछ सुनते चलने में तो हर्ज़ नहीं।"

अब बड़ी फुरती से दोनों कानों पर दोनों हाथ की उँगलियाँ पहुँच गईं और मैं समझता हूँ कि गांधी जी के उस चित्र के लिए कोई कुछ भी दे देता। मेरे मानस-पटल पर तो वह अंकित हो ही गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल वर्षा हो रही थी। बापू बरामदे में दो कंधों पर हाथ धरे टहल रहे थे। मैं उधर से गुज़रा तो उनकी नज़र पड़ी। देखा हाथ उठे हुए हैं, नमस्कार के लिए मेरा सिर झुक गया। पास आकर खड़ा ही हुआ था कि बापू बोले, "आप भी इस मंडली में आ सकते हैं, किन्तु चर्चा वही चलेगी जो चल रही है।"

उस समय भी किसी को कुछ बातें समझाई जा रही थीं। मैं पास जाकर खड़ा हो गया। जगह कुछ गीली थी। बापू से न रहा गया। बोले, "जगह गीली है। मेरा डाक्टरी मत कहता है कि आप वहाँ न खड़े हों, इधर सूखे में आएँ।"

अब बापू दो बार अपनी बातचीत में विराम-चिह्न लगा चुके थे। मुझे लगा कि एक विराम-चिह्न मैं भी लगा दूँ तो शायद विशेष अनुपयुक्त न होगा। बोला, "बापू मैं तो केवल एक मिनट में एक ही बात पूछने के लिए खड़ा हो गया था।"

"हाँ, वह तो मैं समझ ही गया था।"

"बापू मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपका मुंबई जाने का दिन तो निश्चित है, लौटने का दिन भी निश्चित है क्या ?"

"देखो, मुंबई में एक नारियल मिलता है, जिसमें पानी भी नहीं होता। यदि जिन्ना साहब ने मुझे वैसा नारियल ही दिया, तब तो मैं रविवार को ही लौट आऊँगा और यदि उसके साथ गुड़ भी दिया और यह भी कहा कि कल कुछ मसाला भी देंगे तो इस प्रकार जिन्ना साहब मुझे कुछ दिन ठहरा भी सकते हैं।"

मैं समझ गया बापू हर चीज़ के लिए तैयार हैं। बोला, "बापू आपने मेरे सेवाग्राम छोड़ने पर जो प्रतिबंध लगाया है वह न रहे तो मैं सोचता हूँ, मैं भी इस बीच में मुंबई में अपना कुछ काम कर आऊँ।"

"हॉ, हाँ, मेरे साथ जाने में एक लाभ है। तीसरे दर्जे का टिकट रहने पर भी जगह अच्छी मिल जाती है।"

"मुझे इस लाभ का ध्यान नहीं था, अब आपने ज्ञान करा दिया तो अवश्य फ़ायदा उठाऊँगा।"

"अच्छी बात है।"

"तो बापू, मैं अपना टिकट लेकर स्टेशन पर उपस्थित रहूँगा।"

"हाँ, तो क्या मुझसे यह आशा रखते हो कि मैं टिकट भी ले दूँगा" ? मैं मुसकराता हुआ विदा लेकर चला आया।

यह मानवता आखिर है क्या चीज़ ? कहने-सुनने में तो उससे बढ़कर आसान दूसरी बात नहीं–'आदमी' को 'आदमी' समझना। क्या यह विशेष कठिन कार्य है? हाँ, कठिन। कठिन, बहुत कठिन।

ऐसा क्यों है ? क्योंकि हममें से हर एक की आँख पर न जाने कितने भिन्न-भिन्न नंबरों के चश्मे लगे हुए हैं – 1. धनी-निर्धन का चश्मा, 2. ऊँची जात-नीची जात का चश्मा, 3. छूत-अछूत का चश्मा, 4. निरोगी-रोगी का चश्मा, 5. स्वजातीय तथा विजातीय का चश्मा, 6. स्वधर्मी तथा विधर्मी का चश्मा, 7. अपनी पार्टी अथवा दल के भीतर का और उसके

बाहर का चश्मा। इनके अतिरिक्त और भी जाने कितने चश्मे हैं। ये चश्मे हमें आदमी के साथ आदमी का-सा व्यवहार करने ही नहीं देते।

बापू ने अपनी साधना द्वारा इस प्रकार के चश्मों को ऑखों से उतारने का सफल प्रयत्न किया था। अंधा संसार सही आँख वाले को सहन न कर सका। उसके पास हत्यारे की गोली थी, जो उसने 30 जनवरी की संध्या को अपने माथे पर, अपने ही भाग्य पर दाग दी।

बापू दरिद्रनारायण के पुजारी थे, किंतु उन्हें धनिकों से भी घृणा न थी। वे धनी-निर्धन के पीछे छिपे हुए 'मानव' को देखते थे। बापू ऊँची जात और नीची जात, अछूत और छूत के भ्रम से अपने सार्वजनिक जीवन के आरंभिक युग में ही मुक्त हो गए थे। यदि उनके मन में पक्षपात भी था तो उसके लिए जो जातिवाद के पलड़े में हल्का पड़ता था।

मैं स्वयं प्रार्थनावादी नहीं हूँ, किंतु प्रार्थना करने वाले की इज़्ज़त करता हूँ और बापू की प्रार्थना तो एक छोटी-मोटी धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक कांफ्रेंस होती थी। उस प्रार्थना में कुरान की आयतों के लिए भी जगह रहती थी। सन 47 में एक समय ऐसा आया जब दिल्ली के कुछेक लोगों ने बापू की सभी सभाओं में विघ्न डालना शुरू किया। उनका कहना था कि बापू को वाल्मीकि मंदिर में कुरान की आयतें नहीं पढ़ने देंगे। एक दिन, दो दिन, रोज़-रोज़ आपत्ति होनी शुरू हुई। शनैः-शनैः आपत्ति करने वालों की संख्या कम भी होने लगी। बापू का कहना था कि जब तक एक भी आपत्ति करनेवाला रहेगा, मैं प्रार्थना न करूँगा। एक दिन जब ऐसा लगता था कि अब कोई आपत्ति करने वाला नहीं रहा, तब भी एक लड़का निकल आया। बापू बोले,"ठीक है, अब आज भी प्रार्थना नहीं होगी। एक आदमी भी जब तक या तो समझता नहीं है या अपने आप यहाँ से उठकर चला नहीं जाता है, तब तक मैं प्रार्थना नहीं करूँगा।"

अपने विरोधी के विरोध का इतना आदर ! यही वह जादू था जिसने कुछ दिनों में ही सारे विरोधियों के विरोध को शांत कर दिया।

1 मई, 1947 के दिन बापू ने अपना परिचय स्वयं दिया था, "मैं किसी भी पार्टी का नहीं हूँ। मैं सभी का हूँ। अगर बिहार के हिंदू फिर पागल बनेंगे तो मैं फ़ाका करके मर जाऊँगा। उसी तरह अगर नोआखाली में मुसलमान दीवाने होंगे तो वहाँ भी मुझे मरना है। मैंने वह हक हासिल कर लिया है। मैं जितना हिंदू का हूँ उससे कम मुसलमानों का नहीं हूँ। सिख, पारसी, ईसाई का भी मैं उतना ही हूँ। भले ही लोग मेरी न सुनें, पर जो मैं कहूँगा सबकी ओर से कहूँगा।"

सचमुच बापू सबके थे। इसीलिए तो सब बापू के थे।

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. लेखक ने बापू के निधन के समाचार को 'जंगल की आग' क्यों कहा है ?
2. स्वामी रामतीर्थ ने आदमियों के कौन-से चार प्रकार बताए हैं ?
3. बापू को किस प्रकार का अतिथि प्रिय था ?
4. बापू के निम्नलिखित कथन उनके किन गुणों पर प्रकाश डालते हैं ?
   - जिनको समय दिया जा चुका है, उनको समय देना तो धर्म है, वह कैसे तोड़ा जा सकता है ?
   - आप भी इस मंडली में आ सकते हैं, किंतु चर्चा वही चलेगी जो चल रही है।
   - जगह गीली है। मेरा डॉक्टरी मत कहता है कि आप वहाँ न खड़े हों। इधर सूखे में आएँ।
   - भले ही लोग मेरी न सुनें, पर जो मैं कहूँगा, सबकी ओर से कहूँगा।
5. लेखक बातचीत में विराम चिह्न लग जाने के उल्लेख द्वारा किस ओर संकेत कर रहा है ?
6. 'फ' तथा 'फ़' और 'ज' तथा 'ज़' ध्वनियों के भेद को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित शब्दों का उच्चारण कीजिए :
   - सफल, फ़रिश्ता, फ़ाका, फुरती, फ़ायदा, फिर
   - ज़्यादा, इज़्ज़त, जादू, जगह, इंतज़ार, चीज़।

लिखित

1. बापू के निधन पर हुई प्रतिक्रिया सामान्य लोगों के निधन पर होने वाली प्रतिक्रिया से किस प्रकार भिन्न थी ?
2. हर दो हाथ दो पैर वाले मानव को 'मानव' क्यों नहीं माना जा सकता ?
3. लेखक की दृष्टि में आदमी को आदमी समझना विशेष कठिन कार्य क्यों है ?
4. आशय स्पष्ट कीजिए –
   (क) अंधा संसार सही आँख वाले को सहन नहीं कर सका। उसके पास हत्यारे की गोली थी, जो उसने इसी 30 जनवरी की संध्या को अपने माथे पर — अपने ही भाग्य पर दाग दी।
   (ख) ये चश्मे हमें आदमी के साथ आदमी का-सा व्यवहार करने ही नहीं देते।
   (ग) 'अपने विरोधी के विरोध का इतना आदर !'

भाषा-अध्ययन

(1) नीचे कुछ शब्द दिए गए हैं, जिनके विपरीतार्थी शब्द इस पाठ में आए हैं। उन्हें चुनकर लिखिए –
धनी, संबंधी, स्वजातीय, प्रशंसक, स्वधर्मी

(2) निम्नलिखित समस्त पदों का विग्रह कीजिए तथा समास का नाम बताइए –
स्थापना-दिवस, योग्यता- विस्तार, मानस-पटल, छूत-अछूत, प्रभुत्व-संपन्न, हिंदू-मुसलमान

'सचमुच बापू सबके थे। इसीलिए तो सब बापू के थे।' इस कथन का औचित्य सिद्ध करने के लिए महात्मा गांधी के जीवन के कुछ अन्य प्रसंग चुनिए और कक्षा में भित्ति-पत्रिका पर लगाइए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

निधन – मृत्यु
फ़रिश्ते – देवदूत
मेज़बान – आतिथ्य करने वाला
गैर हाज़िर – अनुपस्थित

अनुपयुक्त – जो उपयुक्त न हो

विजातीय – भिन्न जाति या वर्ग का

फ़ाका – उपवास

दीवाने – पागल

हक – अधिकार

हासिल – प्राप्त

देवदास गांधी – महात्मा गांधी के द्वितीय पुत्र

नूरुल हसन

एस. नूरुल हसन का जन्म सन 1921 में लखनऊ (उत्तर प्रदेश) में हुआ। उनके पिता अब्दुल हसन और माँ नवाबज़ादी खुर्शीद लकुवा बेगम थीं, जिनका संबंध रामपुर नवाब खानदान से था।

प्रोफ़ेसर हसन ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से इतिहास में एम.ए. तथा आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय, इंग्लैंड से डी. फिल. की उपाधि प्राप्त की। कुछ वर्ष लखनऊ विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य करने के बाद वे 'स्कूल ऑफ़ ओरिएंटल एण्ड अफ़्रीकन स्टडीज़', लंदन चले गए। पुनः भारत लौटने पर वे अलीगढ़ विश्वविद्यालय में इतिहास के प्रोफ़ेसर नियुक्त हो गए। वे लंदन की 'रॉयल हिस्टोरिकल सोसाइटी' तथा 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' के फ़ेलो भी रहे।

नूरुल हसन की गणना विख्यात इतिहासज्ञ, शिक्षाशास्त्री और शोधार्थी के रूप में होती है। उन्होंने भारत की सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। वे तीन बार 'भारतीय हिस्टोरिकल कांग्रेस' के अध्यक्ष रहे। इसके अतिरिक्त वे अनेक राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक, सामाजिक तथा स्वैच्छिक संस्थाओं से भी संबद्ध रहे। सन 1969 से 1978 तक वे राज्य सभा के सदस्य रहे। इस बीच लगभग 6 वर्ष (1972 से 1977) तक वे भारत सरकार के शिक्षा, समाज कल्याण और संस्कृति मंत्रालय में मंत्री रहे। यूनेस्को में उन्होंने 1971, 1972, 1974 तथा 1976 के भारतीय प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व किया था। यूनेस्को की मानव जाति के इतिहास की प्रतिष्ठित परियोजना से भी वे संबद्ध रहे। बाद में उन्होंने तत्कालीन सोवियत रूस में भारतीय राजदूत तथा पश्चिम बंगाल

और उड़ीसा के राज्यपाल पदों को भी सुशोभित किया। प्रो. हसन का निधन सन 1993 में कोलकाता (कलकत्ता) में हुआ।

नूरुल हसन मूलतः एक प्रतिबद्‌ध इतिहासकार थे। वे संगीत और कला के पारखी भी थे।

प्रस्तुत पाठ रामचरितमानस की चतुश्शती के संबंध में आयोजित समारोह में शिक्षामंत्री के रूप में नूरुल हसन द्‌वारा तुलसीदासजी को अर्पित एक श्रद्‌धांजलि है। इस पाठ में सारगर्भित शब्दों में तुलसी के समन्वयवादी दृष्टिकोण, जीवन में आचरण और कर्म की महत्ता, जनभाषा के माध्यम से भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति आदि विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। उनके विचार से तुलसी केवल युग पुरुष नहीं थे, बल्कि युग-युग के पुरुष थे।

संत तुलसीदास

पिछले दो-तीन सालों में रामचरितमानस की चौथी सदी के संबंध में देश और विदेश में बहुत से जलसे किए गए। इस दौरान तुलसीदास और रामचरितमानस के बारे में कई अहम किताबें भी लिखी गईं। कुछ लोगों ने तुलसीदास को पुराणपंथी और दकियानूसी बताया तो कुछ और लोगों ने उन्हें प्रगतिवादी और समाजवादी साबित किया। मैं इस बहस में नहीं पड़ना चाहता। इतिहास का विद्यार्थी होने के नाते मेरी रुचि मध्य युग के कवियों, संतों और लेखकों में रही है। मैंने उनको भक्ति-आंदोलन के सिलसिले में देखा और परखा है। सच पूछिए तो सदियों से चले आ रहे भक्ति-आंदोलन को सही दिशा सूफ़ी फ़कीरों और संत कवियों ने दी। तुलसीदासजी का इस आंदोलन में बड़ा योगदान रहा है। मैं आज तुलसीदास के बारे में न तो ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करना चाहता हूँ और न ही इस बात पर ज़ोर देना चाहता हूँ कि उन्होंने राज का, समाज का और अनुशासन का कौन-सा रूप हमारे सामने रखा। मेरे सामने तुलसीदास की तस्वीर उन्हीं के शब्दों में यह है—

माँगिके खैबो मसीत को सोइबो
लैबे को एक न दैबे को दोऊ।

यह फ़कीर अपनी जात से ऊँचा उठकर समाज को कुछ देना चाहता है इसीलिए उसने एक तरफ़ तो पुरानी परंपराओं के ढाँचे को साफ़ और मज़बूत बनाकर हमारे सामने रखा और दूसरी तरफ़ उसने भारतीय संस्कृति के उस मिले-जुले रूप को पेश किया जो उस युग की माँग थी और जिसका सिलसिला हिंदुस्तान में सदियों से चला आ रहा था। दरअसल भारतीय संस्कृति गंगा की धारा के समान है जिसमें बहुत सी धाराएँ मिलकर एक हो जाती हैं। भारत

तो एक ऐसा चमन है जिसमें बहुत सी ज़बानें हैं, बहुत से धर्म हैं, बहुत सी जातियाँ हैं, जो तरह-तरह के फूलों और फलों के मानिंद हैं और सब मिलकर चमन की खूबसूरती बढ़ाते हैं। तुलसीदास ने इसी चमन में माली का काम किया। इसलिए देशी और विदेशी सभी विद्वान तुलसीदास पर मोहित हैं।

इसलिए हमें यह देखना होगा कि तुलसीदास में वे कौन-सी विशेषताएँ हैं जिनकी वजह से उसकी शख्सियत हर रोज़ रौशन होकर हमारे सामने आ रही है। यह ठीक है कि रामचरितमानस का हज़ारों और लाखों आदमी आज पाठ करते हैं और अपनी-अपनी भावनाओं के मुताबिक उसके अर्थ भी निकालते हैं लेकिन तुलसीदास को अमर बनानेवाली चीज़ सिर्फ़ यही नहीं है। इसका हमें ठोस आधार ढूँढ़ना होगा। तुलसीदास युगपुरुष थे, बल्कि हम कह सकते हैं कि युग-युग के पुरुष थे। उन्हें प्रेरणा अपने युग से मिली, लेकिन वह उससे बँधे नहीं। सोलहवीं और सत्रहवीं सदी में भारत की सियासत में कुछ ठहराव आ गया था लेकिन कुछ ऐसी चीज़ें भी समाज में दाखिल हो चुकी थीं जिनका भारत की परंपराओं से टकराव था। भारतीय संस्कृति की धारा भी कुछ अलग-अलग दिशाओं में बह रही थी। ज़िंदगी के मूल्यों में भी उतार-चढ़ाव था। जिन्होंने भक्ति आंदोलन को गहराई से देखा होगा वे इस बात को अच्छी तरह से समझ सकते हैं। तुलसीदास की निगाह ने इस बात को भाँप लिया और उन्होंने अपनी ज़िंदगी समाज और देश के लिए उत्सर्ग कर दी। भारतीय संस्कृति की धारा वैदिक काल से ही अपनी दिशा बदलती रही है। परंपराएँ और जीवन के मूल्य भी अलग-अलग रूपों में हमारे सामने आते रहे हैं।

भारत की यह विशेषता रही है कि यहाँ के संतों, कवियों और साहित्यकारों ने इस टकराव को दूर करने की कोशिश की है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, आचार्य शंकर, गोरखनाथ, कबीर, दादू और जायसी वगैरह ने भारतीय संस्कृति को विशेष दिशा देने का काम किया था। तुलसीदास ने भी अपने जीवन का यही मकसद बनाया। उनके सामने सवाल था कि वह किस आधार पर अपने मिशन को पूरा करें। समाज के हालात को देखकर उन्होंने राम और रावण की कहानी को लिया और उसके ज़रिए भारतीय संस्कृति का सारा रूप ही

हमारे सामने पेश कर दिया। राम इंसानियत के पैमाने में और रावण हैवानियत के। इस तरह उन्होंने जनमानस तक अपना संदेश पहुँचाने की कोशिश की। खूबी यह रही कि परंपरा के पुराने ढॉचे को उन्होंने रद्द नही किया, चाहे वर्णों का हो या आश्रमों का, वेदों का मसला हो या पुराणों का, सभी को उन्होंने अहमियत दी और सबको साथ लेकर उन्होंने समाज का ऐसा ढाँचा जनता के सामने पेश किया जिसको सबने पसंद किया। राम और रावण की लड़ाई क्या है, निर्गुण और सगुण की चर्चा क्या है, शिव शक्ति और विष्णु की भक्ति क्या है– इन सबका निचोड़ तुलसीदास ने पेश करने की कोशिश की।

अकबर ने भी अपने ढंग से यह काम करने की कोशिश की थी, पर उसकी अपील जनता तक नहीं थी। दूसरी खास बात जो तुलसीदास ने की वह है, कर्म को अहमियत देना। भारतीय संस्कृति कर्म से कुछ दूर हटती जा रही थी। इसके लिए उन्होंने भक्ति का रूप सामने रखा, जिसमें कर्म और आचरण ही सब कुछ है। सिर्फ़ उसूलों की दुहाई देना तुलसीदास को पसंद न था। अपने संदेश को जनता तक पहुँचाने के लिए उन्होंने जनता की भाषा का ही सहारा लिया। जो काम अब तक संस्कृत के ज़रिए किया जाता था उसके लिए उन्होंने अवधी ज़बान को चुना, क्योंकि वह जानते थे कि मैत्री और एकता के लिए जनभाषा को अपनाना बहुत ज़रूरी है। इसलिए बहुत-सी मुसीबतें बरदाश्त करके भी, बिना किसी झिझक और डर के उन्होंने भारतीय संस्कृति को जनभाषा के ज़रिए हमारे सामने रखा। वह इस बात को मानते थे कि भारतीय संस्कृति की परंपरा के रूप में परिवर्तन होना चाहिए और वह जनभाषा के ज़रिए ही हो सकता है। इसका आधार हमें मामूली इंसान को नहीं बल्कि गैरमामूली इंसान यानी मर्यादा पुरुषोत्तम को बनाना पड़ेगा। इसलिए उन्होंने राम को चुना।

तुलसीदास इस बात को भी समझते थे कि जहाँ एक तरफ़ हिंदुस्तान में बहुत से मत और पंथ आ गए हैं जो आपस में टकराते हैं वहाँ दूसरी तरफ़ गैर-हिंदुस्तानी नस्लों और खासकर इस्लाम का असर भी समाज पर पड़ चुका है। भक्ति आंदोलन का खास उद्देश्य भेदभाव को दूर करना रहा है। इसलिए तुलसीदास अपने राम को छोटे जाति के मल्लाह से गले मिलाते हैं, उन्हें शबरी के जूठे बेर खिलाते हैं और उनसे दकन की छोटी-छोटी जातियों

से भाई-चारे का रिश्ता कायम कराते हैं। इसी को हम मिली-जुली भारतीय संस्कृति को अमली जामा पहनाना कह सकते हैं। मैं समझता हूँ कि तुलसीदास को हिंदू जाति का प्रतिनिधि मानकर उन्हें तंग दायरे में बाँधना उनसे गैर-इंसाफ़ी करना है। तुलसीदास अपने ज़माने का ऐसा नक्शा पेश करते हैं जो शायद दूसरी जगह मिलना मुश्किल है। एक मज़े की बात यह है कि उन्होंने भारत की परंपराओं का अनादर नहीं किया बल्कि जगह-जगह उनको उभारा ही है। यह ठीक है कि वह सीधे इस्लामी मज़हब, फ़लसफ़ा और तहज़ीब की तरफ़ मुखातिब नहीं होते और न ही उन्होंने किसी और फ़िरके पर हमला किया, लेकिन उन्होंने सबसे लिया है। मै तो यहाँ तक कहूँगा कि अकबर के सुलहकुल को उन्होंने अमली जामा पहनाने की कोशिश की है। एक बात ज़रूर है कि जब वह भक्ति और कर्म पर ज़ोर देते हैं तो भारतीय संस्कृति की धारा को रूहानियत का मोड़ देने की कोशिश करते हैं, लेकिन वह रूहानियत, इंसानियत का आला नमूना है और शायद इसीलिए उन्होंने एक आदर्श रामराज्य का सपना देखा था जिसमें सब लोग मिल-जुलकर भाईचारे से रह सकें। एक बात और गौर करने की यह भी है कि तुलसीदास किसी भी तरह अपने ज़माने से कटकर नही चले। इसके साथ उन्होंने उस ज़माने के बहुत से हिंदू-मुस्लिम रीति-रिवाजों को भी अपनी रचनाओं में जगह दी है। अरबी और फ़ारसी के शब्दों को भी अपनाया है। इन सब बातों से नतीजा निकलता है कि जो भक्ति-आंदोलन दकन के आल्वार संतों से शुरू हुआ और सारे देश में बिजली की चमक की तरह फैला, उसको तुलसीदास ने एक दिशा दी।

एक बात जीवन मूल्यों के बारे में और कहना चाहता हूँ। तुलसीदास को हमें एक इकाई के रूप में देखना चाहिए तभी हम उनके योगदान को ठीक समझ सकते हैं। लोक-जीवन और व्यक्तिगत जीवन में उन्होंने कुछ मूल्य पेश किए। लोक-जीवन का सबसे बड़ा मूल्य यह है कि वह किसी एक जाति या वर्ग के लिए नहीं होता, राष्ट्र के लिए होता है और हर इंसान के लिए होता है। उस ज़माने में भारतीय संस्कृति की धारा लोक-जीवन से कुछ हटकर बहने लगी थी, तुलसीदास ने उस कटान को रोका और कई तरीकों से लोक-जीवन की धारा को मज़बूत किया। उन्होंने हर इंसान के लिए चाहे वह राजा हो, फ़कीर हो, विद्वान हो — यही

संदेश दिया कि उसका जीवन लोक की भलाई के लिए है। धर्म और मज़हब में भी उन्होंने आचरण पर बल दिया, उसूलों को नहीं। धर्म का केंद्र उन्होंने मामूली इंसान को नहीं बनाया, राम को बनाया, जो असाधारण थे। जहाँ तक व्यक्तिगत मूल्यों का सवाल है, उनकी अभिव्यक्ति उन्होंने भरत, लक्ष्मण, हनुमान और सीता वगैरह के ज़रिए की। लेकिन उन सबका मकसद भी लोक की भलाई ही है। इस तरह हम देखते हैं कि तुलसीदास ने व्यक्ति से बढ़कर समाज की भलाई पर ज़ोर दिया है और इससे भी बढ़कर मुल्क की भलाई पर ज़ोर दिया है। समाजसेवा और देशसेवा तुलसीदास का संदेश है। भारतीय संस्कृति की एकता उनका मिशन है और रामराज्य उनका आदर्श है। ऐसे संत महात्मा के कदमों में अपनी श्रद्धांजलि पेश करता हूँ।

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. तुलसीदास के बारे में लोगों के अलग-अलग मत क्या थे ?
2. 'माँगिके खैबो मसीत को सोइबो,
   लैबे को एक न दैबे को दोऊ।' इन पंक्तियों से तुलसीदास के बारे में क्या पता लगता है?
3. भारतीय संस्क़ृति को गंगा की धारा के समान क्यों कहा है ?
4. तुलसीदास ने अपना संदेश जनता तक पहुँचाने के लिए जनभाषा को आधार क्यों बनाया?
5. समाज में फेले भेदभाव को दूर करने के लिए तुलसीदास ने रामचरितमानस में किन प्रसंगों का सहारा लिया है ?

लिखित

1. लेखक ने तुलसीदास को युग-पुरुष कहने की अपेक्षा युग-युग का पुरुष कहना क्यों उचित समझा ?
2. तुलसीदास के समय भारतीय समाज की क्या स्थिति थी ?

3. तुलसीदास का अपने जीवन का क्या उद्देश्य था ? इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने राम-रावण की कथा को क्यों चुना ?
4. लेखक के विचार में तुलसीदास को केवल हिंदू जाति का प्रतिनिधि कहना उपयुक्त क्यों नही है ?
5. 'तुलसीदास ने भक्ति आंदोलन को दिशा दी।' सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
6. तुलसीदास ने किन-किन जीवन-मूल्यों पर बल दिया ?
7. तुलसीदास द्वारा प्रस्तुत समाज का ढाँचा सबको पसंद क्यो आया ?
8. तुलसीदास ने कर्मप्रधान संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए भक्ति को आधार क्यों बनाया?
9. तुलसीदास ने लोकजीवन की धारा को मज़बूत करने के लिए क्या मुख्य संदेश दिया ?

भाषा-अध्ययन

1. इस पाठ में अरबी-फ़ारसी मूल के शब्दों की भरमार है। पाठ मे आए कुछ ऐसे शब्द नीचे दिए गए हैं। इन शब्दों के हिंदी रूप लिखिए –
   मानिंद, सिलसिला, ज़रिए, इंसानियत, ज़बान, बरदाश्त, कायम, तहज़ीब, नतीजा, उसूल।
2. निम्नलिखित शब्दों से भाववाचक संज्ञाएँ बनाइए –
   भारतीय, मित्र, हैवान, प्रतिनिधि, भला।

योग्यता-विस्तार

1. इतिहास की पुस्तकों से अकबर की सुलहकुल की नीति के संबंध में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर कक्षा में चर्चा कीजिए।
2. रामचरितमानस की कुछ चौपाइयाँ याद कीजिए और उन्हें कक्षा मे सुनाइए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

श्रद्धांजलि – श्रद्धापूर्ण निवेदन
अहम – महत्त्वपूर्ण
दकियानूसी – परंपरावादी, लीक पीटने वाले
सिलसिले – नज़रिये, दृष्टि से
सिलसिला – क्रम, कड़ी, शृंखला

चमन	–	बाग
मानिंद	–	समान
शख़्सियत	–	व्यक्तित्व
मुताबिक	–	अनुसार
सियासत	–	राजनीति
दाखिल	–	शामिल, प्रवेश
भाँपना	–	समझना
उत्सर्ग	–	दे देना, न्यौछावर कर देना
मकसद	–	उद्देश्य
इंसानियत	–	मानवीयता, मानवता
उसूल	–	सिद्धांत
गैर-इंसाफ़ी	–	अन्याय
फलसफ़ा	–	दर्शन
तहज़ीब	–	सभ्यता
फ़िरके	–	संप्रदाय, पंथ
अमली	–	व्यावहारिक
रूहानियत	–	आध्यात्मिकता
मिशन	–	उद्देश्य
मुखातिब	–	संबोधित
सुलहकुल	–	विश्वबंधुत्व, अकबर ने दीन-ए-इलाही नाम से जिस धार्मिक मार्ग की कल्पना की थी उसके पीछे सुलहकुल का सिद्धांत था।

विष्णु प्रभाकर

विष्णु प्रभाकर का जन्म सन 1912 में मुज़फ़्फ़रनगर (उत्तर प्रदेश) के एक गाँव में हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव की पाठशाला में हुई। कुछ पारिवारिक कारणों से उनको शिक्षा के लिए हिसार (हरियाणा) जाना पड़ा। वहीं पर एक हाई स्कूल में उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। विष्णु प्रभाकर के जीवन पर आर्य समाज तथा महात्मा गांधी के जीवन-दर्शन का गहरा प्रभाव है।

शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् वे हिसार मे ही सरकारी सेवा में आ गए। सरकारी नौकरी के समय भी वे साहित्य के अध्ययन एवं लेखन कार्य में संलग्न रहे। सन 1931 में उनकी पहली कहानी प्रकाशित हुई। सन 1933 में हिसार नगर की शौकिया नाटक कंपनियों के संपर्क में आए और उनमें से एक कंपनी में अभिनेता से लेकर मंत्री तक का कार्य किया। सन 1938 में हंस का एकांकी विशेषांक प्रकाशित हुआ। उसे पढ़ने के उपरांत और कुछ मित्रों की प्रेरणा से उन्होंने सन 1939 में प्रथम एकांकी लिखा, जिसका शीर्षक था – 'हत्या के बाद'।

विष्णु प्रभाकर की रचनाओं में प्रारंभ से ही स्वदेश प्रेम, राष्ट्रीय चेतना और समाज-सुधार का स्वर प्रमुख रहा है। इसके कारण उन्हें ब्रिटिश सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा। अतः उन्होंने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और स्वतंत्र लेखन को अपनी जीविका का साधन बना लिया। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद वे आकाशवाणी दिल्ली में रेडियो रूपक लिखने का कार्य करने लगे। रेडियो रूपकों के अतिरिक्त उन्होंने रंगमंचीय नाटक भी लिखे हैं।

विष्णु प्रभाकर ने कहानी, उपन्यास, रिपोर्ताज़ आदि विधाओं में भी पर्याप्त मात्रा में लिखा है। प्रसिद्ध बांग्ला उपन्यासकार शरत्‌चंद्र के जीवन पर आधारित 'आवारा मसीहा' ने विष्णु जी को सफल जीवनीकार के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं – ***ढलती रात, स्वप्नमयी (उपन्यास), संघर्ष के बाद (कहानी संग्रह), नव प्रभात, डाक्टर (नाटक), प्रकाश और परछाइयाँ, बारह एकांकी, अशोक (एकांकी संग्रह), जाने अनजाने (संस्मरण और रेखाचित्र), आवारा मसीहा (शरत्‌चंद्र की जीवनी)****।*

प्रस्तुत पाठ शरत्‌चंद्र के जीवन का एक अंश है जिसे लेखक की प्रसिद्ध पुस्तक 'आवारा मसीहा' से लिया गया है। इसमें यह दिखाया गया है कि शरत्‌चंद्र एक उच्चकोटि के मानवतावादी साहित्यकार ही नहीं, बल्कि सच्चे देशभक्त और स्वतंत्रता संग्राम सेनानी भी थे। शरत्‌चंद्र का मत था कि राजनीतिक आंदोलन देश की मुक्ति का व्रत है। इस आंदोलन में साहित्यकारों को सबसे आगे बढ़कर योगदान देना चाहिए। लोकमत को जाग्रत करने का उत्तरदायित्व साहित्यिकों पर ही है।

शरत्‌चंद्र

जिस समय शरत्‌चंद्र लोकप्रियता की चरम सीमा पर थे, उसी समय उनके जीवन में एक और क्रांति का उदय हुआ। समूचा देश एक नई करवट ले रहा था। राजनीतिक क्षितिज पर तेज़ी के साथ नई परिस्थितियाँ पैदा हो रही थी। ब्रिटिश क्राउन के प्रति वफ़ादारी की प्रतिज्ञा लेने वाली कांग्रेस ने केंचुल उतार फेंकी थी क्योंकि प्रथम महायुद्ध के समाप्त हो जाने पर भारत के हार्दिक सहयोग के बदले में उसी क्राउन ने उसे रौलेट एक्ट प्रदान किया था। दक्षिण अफ़्रीका में रंगभेद के विरुद्ध संघर्ष करने वाले महात्मा गांधी ने घोषणा की, 'यदि रौलेट कमीशन की सिफ़ारिश को बिल का रूप दिया गया तो मैं सत्याग्रह आरंभ कर दूँगा।'

उन्होंने देश का दौरा किया। उस समय उनके कार्यक्रम का जैसा अभूतपूर्व स्वागत हुआ वैसा शायद फिर कभी नहीं हो सका। सभी ने बड़े उत्साह के साथ उस आंदोलन में भाग लिया। अप्रैल, 1919 में पंजाब में ऐसी अमानुषिक घटना घटी कि सारा देश काँप उठा। 13 अप्रैल को बैसाखी के दिन अमृतसर के जलियाँवाला बाग में एक सभा आयोजित की गई थी। बीस हज़ार स्त्री-पुरुष अपने नेता का भाषण सुन रहे थे कि एक बड़ी सेना लेकर जनरल डायर ने उन्हें घेर लिया। गोली चलाने के पूर्व उसने लोगों को तितर-बितर होने के लिए केवल दो मिनट का समय दिया। जाने के लिए मार्ग था केवल एक सँकरा दरवाज़ा। भागना चाहने पर भी लोग भाग नहीं सकते थे। सैकड़ों व्यक्ति उसी क्षण मारे गए। हज़ारों घायल हुए। उनकी सहायता करने के सारे प्रयत्न विफल कर दिए गए।

इस घटना ने देश के आत्माभिमान पर चोट की। विषधर भुजंग की भाँति वह तड़पकर पागल हो उठा। बड़े-बड़े सरकारपरस्त भी उस दिन विद्रोही हो गए। रवींद्रनाथ ठाकुर इतने

विचलित हुए कि उन्होंने 'सर' की उपाधि लौटा दी, शरत्चंद्र इस बात से बहुत प्रसन्न हुए। पंजाब के इंग्लिश दैनिक 'ट्रिब्यून' के संपादक श्री अमल होम को एक पत्र में उन्होंने लिखा– उस दिन सुना कि तुम भी खूब विपत्ति में पड़े। अंग्रेज़ों की हिंसक मूर्ति बहुत पास से अच्छी तरह देखी, यह कम लाभ नहीं है। हमारा मोह काटने के लिए यह आवश्यक था। हमें यह समझ लेना है कि वे इतने निष्ठुर और पशु हो सकते हैं। यह बात इतिहास के पन्नों से एक दिन हमने समझी थी। इस बार प्रत्यक्ष अनुभव किया। एक और लाभ हुआ कि देश की वेदना के बीच में हमने रवींद्रनाथ को नए रूप में पाया। इस बार अकेले उन्होंने ही हमारे आत्माभिमान की रक्षा की। सी. आर. दास ने एक दिन मुझसे कहा था कि रवि बाबू ने जब नाइटहुड स्वीकार किया था तो वे रोये थे। अब उनसे मिलने पर पूछूँगा कि आज हमारी छाती दस हाथ फूल गई या नहीं?

देशबंधु चित्तरंजनदास स्वयं मन-प्राण से इस आंदोलन में कूद पड़े थे। राष्ट्रीय कांग्रेस के अमृतसर अधिवेशन में उन्होंने सक्रिय भाग लिया। शरत् बाबू का देशबंधु के साथ अत्यंत स्नेह था, इसलिए वे भी बड़ी तेज़ी के साथ उस ओर खिंच आए। जलियाँवाला बाग हत्याकांड के प्रतिरोध में हावड़ा में जो विशाल सभा हुई, उसमें उन्होंने प्रत्यक्ष भाग लिया और इस प्रकार देशबंधु के साथ उनका जो संपर्क था उसे निरा साहित्यिक ही नहीं रहने दिया।

शरत्चंद्र का राजनीतिक झुकाव सदा गरमदल की ओर रहा। लोकमान्य के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धा थी। हरिलक्ष्मी की मँझली बहू शरमाते हुए, हँसते हुए कहती है, 'तिलक महाराज की तस्वीर देख-देखकर बनाने की कोशिश की थी जीजी, पर कुछ बना नहीं।' यह कहते हुए उसने उँगली उठाकर सामने की दीवार पर टँगे हुए भारत के कौस्तुभ लोकमान्य तिलक का चित्र दिखा दिया। उन्हीं तिलक का जब 31 जुलाई की आधी रात के बाद देहावसान हो गया तब व्याकुल मन शरत्चंद्र ने लिखा – तिलक केवल हमारे भाई ही नहीं थे, बंधु ही नहीं थे, नेता ही नहीं थे, वे हम बाईस करोड़ के मलिन ललाट के शुभ्र गौरवमय तिलक थे। वही तिलक आज मिट गया है। हम अनाथ हो गए हैं !

बंगाल प्रारंभ में गांधीजी से पूरी तरह सहमत नहीं था। देशबंधु असहयोग कार्यक्रम के विरुद्‍ध थे लेकिन फिर भी सन 1920 में कलकत्ता (कोलकाता) में होने वाले कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में, जिसके सभापति पंजाब केसरी लाला लाजपतराय थे, गांधी जी का प्रस्ताव पास हो गया।

इस प्रस्ताव में सरकार पर प्रतिज्ञा-भंग का आरोप लगाते हुए कहा गया था, "इस कांग्रेस की राय है कि जब तक भूलों का सुधार न हो जाए और स्वराज्य की स्थापना न हो जाए, भारतवासियों के लिए इसके सिवाय और कोई मार्ग नहीं है कि वे गांधीजी द्‍वारा संचालित क्रमिक अहिंसात्मक असहयोग की नीति को अपनाएँ।"

इस सलाह के अनुसार सरकारी उपाधियों, अदालतों, स्कूल-कालेजों, कौंसिलों, सरकारी दरबारों का त्याग तथा विदेशी माल का बहिष्कार आवश्यक था और आवश्यक था स्वदेशी वस्त्रों तथा चरखे को स्वीकार करना।

इस प्रस्ताव में देश से अनुरोध किया गया कि लोग राष्ट्रीय आंदोलन में अधिक से अधिक त्याग करें। इस बात पर विशेष ज़ोर दिया गया कि सब सार्वजनिक संस्थाएँ सरकार से असहयोग करने में अपना सारा ध्यान लगा दें और जनता में परस्पर पूर्ण सहयोग स्थापित करें।

देशबंधु दास ने घोषणा की कि वे अपनी वकालत छोड़ देंगे। वे चोटी के वकील थे। उनकी आय और उनके ऐश्वर्य की कोई सीमा न थी। उनकी इस घोषणा ने देश को आलोड़ित कर दिया। देखत-देखते उनका घर एक राजनीतिक संस्थान, परामर्श, संगठन और प्रचार का केंद्र बन गया। शरत् बाबू उन दिनों बाजे शिवपुर में रहते थे। उन्होंने संपूर्ण हृदय से असहयोग आंदोलन का समर्थन किया। वे न केवल हावड़ा जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष चुने गए बल्कि बंगाल प्रादेशिक और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य भी निर्वाचित हुए। इस प्रकार इस आंदोलन के परिचालन का उत्तरदायित्व भी उन पर आ गया। इस उत्तरदायित्व को उन्होंने मुक्त मन से स्वीकार किया। प्रायः प्रतिदिन सवेरे वे शिवपुर से

कोलकाता आते और देशबंधु तथा दूसरे कार्यकर्ताओं के साथ आंदोलन के संचालन के संबंध में परामर्श करते। इन कार्यकर्ताओं में प्रमुख थे डा. यतींद्रमोहन दासगुप्त, सुभाषचंद्र बोस, हेमंतकुमार सरकार और निर्मलचंद्र 'चंद्र'। चंद्र महोदय से उनकी विशेष घनिष्ठता थी। दोनों वाक्‌पटु, सरलप्राण तथा रवींद्रनाथ के परम भक्त थे।

शरत्‌चंद्र परामर्श देने में विशेष पटु थे। किसी जटिल समस्या को लेकर जब सब उलझे रहते तब वे चाय और चुरुट-सेवन में मन देते। और जब दूसरे लोग परेशान हो उठते तो वे सहज भाव से समस्या का समाधान प्रस्तुत करके सबको चकित कर देते।

शरत् साहित्यकार थे और साहित्यकार प्रायः राजनीति के दलदल से दूर रहता है, परंतु वे मानते थे कि भारत की स्वतंत्रता के लिए जो आंदोलन गांधीजी ने चलाया है वह केवल शुष्क राजनीति ही नहीं है, देश की मुक्ति का व्रत है। जो देश की दासता को सह सकता है वह साहित्यिक नही है। उनके साहित्य में देश और मनुष्य का यही प्रेम परिष्कृत हुआ है। उसी देश और मनुष्य के प्रेम के कारण वह असहयोग आंदोलन से अलग नहीं रह सके। साहित्यिक मित्रों ने उनसे कहा, "आप तो साहित्यिक हैं। आपका काम साहित्य -चर्चा है, राजनीति नहीं।"

शरत् ने उत्तर दिया, "यह आपकी भूल है। राजनीति में योग देना देशवासियों का कर्तव्य है। विशेषकर हमारे देश में यह राजनीतिक आंदोलन देश की मुक्ति का आंदोलन है। इस आंदोलन में साहित्यिकों को सबसे आगे बढ़कर योग देना चाहिए। लोकमत जाग्रत करने का गुरुभार संसार के सभी देशों में साहित्यिकों के ऊपर रहा है। युग-युग में उन्होंने ही तो मनुष्य के मन में मुक्ति की आकांक्षा जगाई है। यदि आपकी बात मान भी लें, तो वकील, बैरिस्टर, डॉक्टर, और विद्‌यार्थी सभी यही तर्क उपस्थित करेंगे। तब राजनीति को कौन सँभालेगा ?"

शरत्‌चंद्र देश की मुक्ति के आंदोलन में पूर्ण विश्वास रखते थे , परंतु उसके सारे कार्यक्रम में न तो उनकी पूरी श्रद्‌धा थी और न वैसी आस्था ही। विशेषकर चरखे में उनका

रंचमात्र भी विश्वास नहीं था। फिर भी निरंतर कातते रहे और खद्दर पहनते रहे। स्थान-स्थान पर चरखा स्थापित करने में उन्होंने अपनी जेब से बहुत-सा पैसा खर्च किया था। उनकी मान्यता थी कि उनका विश्वास हो या न हो, परंतु जब कांग्रेस ने खद्दर पहनने का नियम बनाया है तो पहनना ही चाहिए। नहीं तो अनुशासन कैसे रहेगा ? इसलिए वे कातते थे, और सुंदर कातते थे। इतना सुंदर कि एक बार वैज्ञानिक आचार्य प्रफुल्लचंद्र राय उनके काते हुए सूत का बुना कपड़ा सिर पर रखकर नाच उठे।

वैज्ञानिक प्रफुल्लचंद्र साहित्यिक शरत्चंद्र के बड़े प्रशंसक थे। शरत् बाबू भी उनके प्रति कम श्रद्धा नहीं रखते थे। उन दोनों महाप्राण व्यक्तियों का प्रथम मिलन एक असाधारण घटना के रूप में प्रचारित हो गया था। एक दिन किसी संदर्भ में राय महोदय ने अपने विद्यार्थियों के सामने शरत् बाबू से मिलने की इच्छा प्रकट की। तुरंत एक विद्यार्थी शरत् बाबू के पास पहुँचा और निवेदन किया कि क्या वे किसी दिन राय महोदय से मिलने के लिए चल सकेंगे ?

शरत् बाबू स्वयं बड़े उत्सुक थे, इसलिए वे उसी क्षण उस विद्यार्थी के साथ चल पड़े।

साइंस कॉलेज के ऊपर के तल्ले के एक कमरे में राय महोदय रहते थे। दोनों सीधे वहाँ पहुँचे। उस समय राय महोदय अपनी छोटी खाट पर बैठे काम करने में व्यस्त थे। शरत् बाबू ने देखा, खाट के पास दो कुरसियाँ है, परंतु दोनों कागज़-पत्रों से भरी हैं। बैठने के लिए कहीं भी रंचमात्र स्थान नही हैं। तब वे खाट पर बैठने के लिए आगे बढ़े कि सहसा राय महोदय उत्तेजित होकर बोल उठे, "क्या करते हो, क्या करते हो, खाट पर मत बैठो।"

शरत् खड़े के खड़े रह गए। विद्यार्थी की लज्जा का पार नहीं, शीघ्रता से एक कुरसी उठा लाया। शरत् बैठ गए। अब राय महोदय ने उनकी ओर देखकर सहज भाव से पूछा, "क्या कर रहे हो आजकल ?"

शरत् ने उत्तर दिया, "थोड़ा-बहुत लिखने की चेष्टा करता हूँ।"

उत्साहित करते हुए प्रफुल्ल बाबू बोले, "सुंदर ! करे (किए) जाओ। खूब लिखो, लेकिन हाँ, छपाने की जल्दी मत करना।"

बातचीत से स्पष्ट था कि राय महोदय उन्हें अपना कोई पुराना छात्र समझ रहे हैं। विनीत भाव से उन्होंने कहा, "छापने लायक कुछ नहीं है। बस चेष्टा करता हूँ।"

जिस छात्र के साथ शरत् बाबू आए थे वह अब अपने को न रोक सका। प्रफुल्ल बाबू के पास आकर उसने कहा, "जी, ये शरत् बाबू हैं।"

सुनते ही प्रफुल्लचंद्र राय ने चश्मे के ऊपर से शरत्चंद्र को एक बार अच्छी तरह देखा। फिर उठकर तुरंत द्वार पर आए और अपने प्रिय शिष्यों के नाम ले-लेकर पुकारने लगे। क्षण-भर में वहाँ एक छोटी-सी भीड़ जमा हो गई। उनको लेकर सेनापति की तरह वे आगे-आगे घर में घुसे। शरत् बाबू की ओर उँगली से दिखाकर बोले, "देखते हो, उधर कौन बैठा है ? ये हैं श्री शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय। उधर देखो उनकी सब पुस्तकें हैं, आज स्वयं भी आए हैं। अच्छी तरह देखो। पैरों की धूल लो।"

उसके बाद शरत्चंद्र के पास आकर बैठ गए और एक अंतरंग मित्र की तरह बातें करने लगे। बोले, "आपकी पुस्तकें पढ़कर कितनी बार बातचीत करने की इच्छा हुई है। आज इतने दिन बाद वह पूरी हुई।"

इस बातचीत में अपरिचय के कारण प्रारंभ में जो भूल हो गई थी, उसके लिए क्षमा-प्रार्थना करने की सुधि भी नहीं उन्हें रही। जहाँ स्नेह हो वहाँ क्षमा कोई अर्थ नहीं रखती।

उनके सारे जीवन की तरह यह मिलन भी रोमांचकारी है। महात्मा गांधी से उनकी प्रथम भेंट भी संभवतः इतनी ही रोमांचकारी रही होगी। परंतु उसका कोई विवरण किसी ने नहीं लिखा। बहुत पहले रंगून में उन्होंने महात्मा जी को देखा था। उनके स्वागत समारोह की रिपोर्ट भी उन्होंने लिखी थी। वह रिपोर्ट रंगून गज़ट में छपी थी, लेकिन भारत में उनकी महात्मा जी से जिस भेंट का विवरण उपलब्ध है, वह चरखे को लेकर ही है। राय महोदय की तरह महात्मा जी ने भी उनके कते सूत की प्रशंसा की थी। असहयोग आंदोलन के समय जब वे कोलकाता

आए थे तो एक दिन 'सर्वेंट' का कार्यालय देखने के लिए गए। देशबंधु दास के घर से और भी कई व्यक्ति उनके साथ थे। श्री श्यामसुंदर चक्रवर्ती उस समय बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे। वह भी थे, शरत्चंद्र भी थे। कार्यालय में पहुँचकर महात्मा जी ने सबके साथ चरखा कातने की इच्छा प्रकट की।

चरखे आए और सब कातने लगे। महात्मा जी की दृष्टि बड़ी तीक्ष्ण थी। तुरंत ही उन्होंने देख लिया कि शरत् बाबू का सूत बहुत सुंदर है। इसके विपरीत श्याम बाबू बहुत मोटा कात रहे हैं।

परिहास के स्वर में बोले, "अरे, देखो तो, बंगाल प्रांतीय कांग्रेस के प्रधान रस्से जैसा मोटा सूत कात रहे हैं।"

सुनकर सब हँस पड़े। शरत्चंद्र बोले, "मंदिर के जो जितना पास होता है। भगवान से उतना ही दूर होता है।"

महात्माजी ने कहा, "शरत् बाबू, आपकी चरखे में श्रद्धा नहीं है ?"

"नहीं, रत्ती भर नही।"

"महात्मा जी ने कहा, "लेकिन कातते तो आप चरखे के अनेक प्रेमियों से अच्छा है।"

शरत् बोले, "मैं चरखे को नहीं, आपको प्यार करता हूँ। मैंने चरखा कातना इसीलिए सीखा है।"

महात्मा जी हँस पड़े। बोले, "लेकिन आप इस बात में विश्वास नही करते कि कातने से स्वराज्य-प्राप्ति में सहायता मिलेगी ?"

शरत्चंद्र ने हॅसते हुए कहा, "जी नहीं, मैं विश्वास नहीं करता। मेरे विचार में स्वराज्य-प्राप्ति में सिपाही ही सहायक हो सकते हैं, चरखे नहीं।"

यह बात सुनकर महात्मा जी बड़े ज़ोर से हँस पड़े।

लेकिन विश्वास हो या न हो, चरखे के लिए कुछ करने में उन्होंने कोई कसर उठा न रखी। छूट गया ऐश्वर्य, छूट गई सिल्क की पोशाक, रह गया बस खद्दर। तेल की बनी पकौड़ी-कचौड़ी, यहाँ तक कि भुने हुए चने खा-खा कर गाँव-गाँव चरखे का प्रचार करते वे घूमे। वे स्वयं कातते थे, घर के दूसरे लोग कातते थे, नौकर तक कातते थे और चकमा देते थे। शरत् पूछते, "क्यों रे, अमुक काम क्यों नहीं किया ?"

जबाब मिला, "चरखा कात रहा था।"

('*आवारा मसीहा*' से)

प्रश्न -अभ्यास

मौखिक

1. महात्मा गांधी ने किस संदर्भ में कहा कि मैं सत्याग्रह आरंभ कर दूँगा ?
2. तिलक के प्रति शरत्चंद्र की सच्ची श्रद्धा का पता कैसे चलता है ?
3. असहयोग आंदोलन के अंतर्गत देशवासियों को क्या सलाह दी गई थी ?
4. चरखे मे विश्वास न होने पर भी शरत्चंद्र चरखा क्यों कातते थे ?
5. शरत्चंद्र ने खादी के प्रचार के लिए क्या-क्या कार्य किए ?

लिखित

1. रवींद्रनाथ के 'सर' की उपाधि लौटा देने पर शरत्चंद्र ने चित्तरंजनदास से यह क्यों कहना चाहा कि आज हमारी छाती दस हाथ फूल गई या नहीं ?
2. लेखक ने प्रफुल्लचंद्र राय और शरत्चंद्र के प्रथम मिलन को असाधारण घटना क्यों कहा है ?
3. शरत्चंद्र ने साहित्यिकों को राजनीति से कटकर रहने को भूल क्यों माना है ?
4. उन प्रसंगों का उल्लेख कीजिए जिनसे पता लगता है कि देश के मुक्ति आंदोलन में पूर्ण विश्वास के बावजूद उसके सारे कार्यक्रम में उनकी पूरी श्रद्धा नहीं थी ।

5. 'मंदिर के जो जितना पास होता है भगवान से उतना दूर होता है ।' शरत्चंद्र ने यह किस प्रसंग में कहा और इसका क्या आशय है ?
6. उन प्रसंगों का वर्णन कीजिए जिनसे शरत्चंद्र के निम्नलिखित गुणों पर प्रकाश पड़ता है –

   विनम्रता, नेता में अटूट आस्था, अनुशासनप्रियता, स्पष्टवादिता, समर्पित देशभक्त ।

भाषा-अध्ययन

नीचे कुछ शब्द दिए गए हैं । प्रत्येक शब्द के सामने उसके अर्थ को व्यक्त करने वाला शब्द पाठ में से चुनकर लिखिए।

शब्द	पाठ में प्रयुक्त शब्द
अभूतपूर्व	
अमानुषिक	
असाधारण	
अपरिचय	

योग्यता-विस्तार

1. पाठ में आए स्वतंत्रता सेनानियों के स्वाधीनता संग्राम में योगदान के विषय में जानकारी प्राप्त कीजिए और उनमें से कुछ के संबंध में चर्चा कीजिए ।
2. शरत्चंद्र की कुछ प्रसिद्ध रचनाएँ पढ़िए ।

शब्दार्थ और टिप्पणी

लोकप्रियता – लोगों की पसंद
चरम – सर्वोच्च
क्रांति – परिवर्तन
उदय – उगना, प्रकट होना
क्षितिज – वह स्थान जहाँ पृथ्वी और आकाश मिलते हुए प्रतीत होते है
ब्रिटिश क्राउन – अंग्रेज़ सरकार
वफ़ादारी – निष्ठा

केंचुल	–	साँप की परिवर्तनशील त्वचा
प्रथम महायुद्ध	–	सन् 1914 से 1918 तक हुआ विश्वयुद्ध
रंग भेद	–	काले गोरे के बीच किया जाने वाला भेद-भाव
अमानुषिक	–	बर्बर
बैसाखी	–	13 अप्रैल को मनाया जाने वाला संक्रांति का त्यौहार
भुजंग	–	साँप
नाइटहुड	–	ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली 'सर' की उपाधि
सी. आर. दास	–	देशभक्त भारतीय नेता चित्तरंजन दास
लोकमान्य	–	बाल गंगाधर तिलक के लिए सम्मानसूचक शब्द
कौस्तुभ	–	विष्णु के गले की मणि
आलोड़ित	–	मथ डालना
उत्तरदायित्व	–	जिम्मेदारी
पटु	–	कुशल
मुक्ति	–	आज़ादी
रंचमात्र	–	तनिक सा भी
अंतरंग	–	बहुत नज़दीकी, हमराज़
सुधि	–	याद
हरिलक्ष्मी	–	शरत्चंद्र की एक लोकप्रिय कहानी
रौलेट एक्ट	–	सन 1918 में भारत की ब्रिटिश सरकार ने एक एक्ट बनाया जिसके अनुसार किसी भी भारतीय नागरिक को बिना वारंट के राजद्रोह के जुर्म में गिरफ्तार किया जा सकता था । भारतीयों ने इसे काला कानून कहा।
असहयोग कार्यक्रम	–	भारत से अंग्रेज़ी साम्राज्य को हटाने के लिए गांधी जी ने एक योजना बनाई जिसमें उन्होंने जनता से अपील की कि लोग सरकारी कार्यालयों, अदालतों, शिक्षा संस्थानों आदि में सरकार का साथ न दें।

हरिशंकर परसाई

हरिशंकर परसाई का जन्म सन 1922 में होशंगाबाद (मध्यप्रदेश) के जमानी ग्राम में हुआ। स्नातक स्तर तक मध्यप्रदेश में ही शिक्षा ग्रहण करने के बाद नागपुर विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए. कर अध्यापन कार्य प्रारंभ किया किंतु कुछ ही वर्षों में नौकरी का मोह छोड़कर स्वतंत्र लेखन को अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया। इन्होंने जबलपुर से 'वसुधा' नामक साहित्यिक पत्रिका निकाली और विषम आर्थिक परिस्थितियों में भी अनेक वर्षों तक उसे चलाते रहे। परसाई जी का निधन सन 1995 में हुआ।

परसाई जी ने यद्यपि कहानी, उपन्यास और निबंधों की रचना भी की है किंतु उन्हें सर्वाधिक प्रसिद्धि व्यंग्य रचनाओं से ही मिली है। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं— ***रानी नागफनी की कहानी, तट की खोज*** *(उपन्यास),* ***हँसते हैं रोते हैं, जैसे उनके दिन फिरे*** *(कहानी संग्रह),* ***वैष्णव की फिसलन, तिरछी रेखाएँ, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, विकलांग श्रद्धा का दौर*** *(व्यंग्य),* ***तब की बात और थी, भूत के पाँव पीछे, बेईमानी की परत, पगडंडियों का ज़माना, सदाचार की ताबीज़,*** *और* ***अंत में*** *(निबंध संग्रह)। व्यंग्य शैली परसाई की लेखनी में ऐसी रची-बसी है कि उनके निबंध, कहानी, उपन्यासों में भी व्यक्ति और समाज की कमज़ोरियों पर करारी चोट की गई है।*

परसाई का व्यंग्य केवल मनोरंजन के लिए नहीं है, इसलिए वह केवल गुदगुदाता नहीं, भीतर तक कचोटता है। वे बार-बार पाठक का ध्यान व्यक्ति और समाज की उन कमज़ोरियों और विसंगतियों की ओर आकृष्ट करते हैं जो हमारे जीवन को दूभर बना रही है। राजनीतिज्ञ, शासक, लालफीता शाह और समाज के विविध व्यक्तियों, चरित्रों के फरेबों

और आडबंरों पर उन्होंने तिलमिला देने वाले व्यंग्य किए हैं तथा विकृतियों को खोलकर सामने रख दिया है।

हमारे समाज में अनेक प्रकार की रूढ़ियाँ और कुरीतियाँ पाई जाती हैं, जिन्हें मध्यवर्गीय लोगों ने भ्रमवश अपनी मर्यादा का (नाक का) प्रश्न बना रखा है। ***दो नाक वाले लोग*** *में लेखक ने इसी विकृति पर ज़ोरदार प्रहार किया है और मर्यादा के इस मिथ्याजाल को तोड़ने का प्रयास किया है।*

दो नाक वाले लोग

मैं उन्हें समझा रहा था कि लड़की की शादी में टीम-टाम में व्यर्थ खर्च मत करो। पर वे बुज़ुर्ग कह रहे थे, 'आप ठीक कहते हैं, मगर रिश्तेदारों में नाक कट जाएगी।' नाक उनकी काफ़ी लंबी थी। मेरा ख़्याल है, नाक की हिफ़ाज़त सब से ज़्यादा इसी देश में होती है। और या तो नाक बहुत नर्म होती है या छुरा तेज़, जिससे छोटी-सी बात से भी नाक कट जाती है। छोटे आदमी की नाक बहुत नाज़ुक होती है। यह छोटा आदमी नाक को छिपाकर क्यों नहीं रखता?

कुछ बड़े आदमी, जिनकी हैसियत है, इस्पात की नाक लगवा लेते हैं और चमड़े का रंग चढ़वा लेते हैं। कालाबाज़ार में जेल हो आए हैं, लोग उस्तरा लिए नाक काटने को घूम रहे हैं। मगर काटें कैसे? नाक तो स्टील की है। चेहरे पर पहले-जैसी ही फ़िट है और शोभा बढ़ा रही है।

स्मगलिंग में पकड़े गए हैं। हथकड़ी पड़ी है। बाज़ार में से ले जाए जा रहे हैं। लोग नाक काटने को उत्सुक हैं। पर वे नाक तो तिजोरी में रखकर स्मगलिंग करने गए थे। बरी होकर लौटेंगे और नाक फिर पहन लेंगे।

और जो नाक रखते ही नहीं हैं, उन्हें तो कोई डर ही नहीं है। दो छेद हैं, जिनसे साँस ले लेते हैं।

कुछ नाकें गुलाब के पौधे की तरह होती हैं। कलम कर दो तो और अच्छी शाखा बढ़ती है और फूल भी बढ़िया लगते हैं। मैंने ऐसी फूल वाली खुशबूदार नाकें बहुत देखी हैं। ज़ब खुशबू कम होने लगती है, ये फिर कलम करा लेते हैं, जैसे किसी को छेड़ दिया और जूते खा गए।

'जूते खा गए'—अजब मुहावरा है। जूते तो मारे जाते हैं। वे खाए कैसे जाते हैं?

नाक और तरह से भी बढ़ती है। एक दिन एक सज्जन आए। बड़े दुखी थे। कहने लगे, "हमारी तो नाक कट गई। लड़की ने भागकर एक विजातीय लड़के से शादी कर ली। हम ब्राह्मण और लड़का कलाल ! नाक कट गई।"

मैंने उन्हें समझाया कि कटी नहीं है, कलम हुई है। तीन-चार महीनों में और बढ़ जाएगी।

तीन-चार महीने बाद वे मिले तो खुश थे। नाक भी पहले से लंबी मालूम होती थी।

वे बोले, "हाँ, कुछ बढ़ गई है। काफ़ी लोग कहते हैं—आपने बड़ा क्रांतिकारी काम किया। कुछ बिरादरी वाले भी कहते हैं। इसीलिए नाक बढ़ गई है।"

कुछ लोग मैंने देखे हैं, जो कई साल अपने शहर की नाक रहे हैं। उनकी नाक अगर कट जाए, तो सारे शहर की नाक कट जाती है। अगर उन्हें संसद का टिकिट न मिले, तो सारा शहर नकटा हो जाता है।

मगर बात मैं उन सज्जन की कर रहा था, जो मेरे सामने बैठे थे और लड़की की शादी पुराने ठाठ से ही करना चाहते थे। पहले वे रईस थे—याने मध्यम हैसियत के रईस। अब गरीब थे। बिगड़ा रईस और बिगड़ा घोड़ा एक तरह के होते हैं—दोनों बौखला जाते हैं। किससे उधार लेकर खा जाएँ, ठिकाना नहीं। उधर बिगड़ा घोड़ा किसे कुचल दे, ठिकाना नहीं। आदमी को बिगड़े रईस और बिगड़े घोड़े, दोनों से दूर रहना चाहिए।

तो जो भूतपूर्व संपन्न बुजुर्ग मेरे सामने बैठे थे, वे प्रगतिशील थे। लड़की का अंतर्जातीय विवाह कर रहे थे। वे खत्री और लड़का शुद्‌ध कान्यकुब्ज। वे खुशी से शादी कर रहे थे। पर उनमें विरोधाभास यह था कि शादी ठाठ से करना चाहते थे। बहुत लोग एक परंपरा से छुटकारा पा लेते हैं, पर दूसरी से बँधे रहते हैं। रात को शराब की पार्टी से किसी ईसाई दोस्त के घर से आ रहे हैं, मगर रास्ते में हनुमान का मंदिर दिख जाए, तो थोड़ा तिलक भी सिंदूर का लगा लेंगे।

तो मैं उन बुज़ुर्ग को समझा रहा था, "आपके पास रुपए हैं नहीं। आप कर्ज़ लेकर शादी का ठाठ बनाएँगे। पर कर्ज़ चुकाएँगे कहाँ से? जब आपने इतना नया कदम उठाया है, कि अंतर्जातीय विवाह कर रहे हैं, तो विवाह भी नए ढंग से कीजिए। लड़का कान्यकुब्ज का है। बिरादरी में शादी करता तो कई हज़ार उसे मिलते। लड़का इतना त्याग तो लड़की के प्रेम के लिए कर चुका। फिर भी वह कहता है— अदालत जाकर शादी कर लेते हैं। बाद में एक पार्टी कर देंगे। आप आर्यसमाजी हैं। घंटे-भर में रास्ते में आर्य समाज मंदिर में वैदिक रीति से शादी कर डालिए। फिर तीन-चार सौ रुपयों की एक पार्टी दे दीजिए। लड़के को एक पैसा भी नहीं चाहिए। लड़की के कपड़े-वगैरह मिलाकर शादी हज़ार में हो जाएगी।"

वे कहने लगे, "बात आप ठीक कहते हैं। मगर रिश्तेदारों को तो बुलाना ही पड़ेगा। फिर जब वे आएँगे तो इज़्ज़त के ख्याल से सजावट, खाना, भेंट वगैरह देनी होगी।"

मैंने कहा, "आपका यहाँ तो कोई रिश्तेदार है नहीं। वे हैं कहाँ?"

उन्होंने जवाब दिया, "वे पंजाब में हैं। पटियाला में ही तीन करीबी रिश्तेदार हैं। कुछ दिल्ली में हैं। आगरा में हैं।"

मैंने कहा, "जब पटियाला वाले के पास आपका निमंत्रणपत्र पहुँचेगा, तो पहले तो वह आपको दस गालियाँ देगा—मई का यह मौसम, इतनी गरमी। लोग तड़ातड़ लू से मर रहे हैं। ऐसे में इतना खर्च लगाकर जबलपुर जाओ। कोई बीमार हो जाए तो और मुसीबत। पटियाला या दिल्ली वाला आपका निमंत्रण पाकर खुश नहीं, दुखी होगा। निमंत्रणपत्र न मिला तो वह खुश होगा और बाद में बात बनाएगा।" कहेगा—"आजकल जी डाक की इतनी गड़बड़ी हो गई है कि निमंत्रणपत्र ही नहीं मिला। वरना ऐसा हो सकता था कि हम न आते!"

मैंने फिर कहा, "मैं आपसे कहता हूँ कि दूर से रिश्तेदार का निमंत्रणपत्र मुझे मिलता है, तो मैं घबरा उठता हूँ।"

सोचता हूँ जो ब्राह्मण ग्यारह रुपए में शनि को उतार दे, पच्चीस रुपयों में सगोत्र विवाह करा दे, मंगली लड़की का मंगल पंद्रह रुपए में उठाकर शुक्र के दायरे में फेंक दे, वह लग्न

सितंबर से लेकर मार्च तक सीमित क्यों नहीं कर देता? मई और जून की भयंकर गरमी के लग्न गोल क्यों नहीं कर देता? वह कर सकता है। और फिर ईसाई और मुसलमानों में जब बिना लग्न शादी होती है, तो क्या वर-वधू मर जाते हैं? आठ प्रकार के विवाहों में जो 'गंधर्व विवाह' है, वह क्या है? वह यही शादी है जो आज होने लगी है कि लड़के-लड़की भागकर कहीं शादी कर लेते हैं। इधर लड़की का बाप गुस्से में पुलिस में रिपोर्ट करता है कि अमुक लड़का हमारी 'नाबालिग' लड़की को भगा ले गया है। मगर कुछ नहीं होता; क्योंकि लड़की मैट्रिक का सर्टिफिकेट साथ ले जाती है जिसमें जन्मतिथि होती है।

वे कहने लगे, "नहीं जी, रिश्तदारों में नाक कट जाएगी।"

मैंने कहा, "पटियाला से इतना किराया लगाकर नाक काटने इधर कोई नहीं आएगा। फिर पटियाला में कटी नाक को इधर कौन देखेगा? काट लें पटियाला में।"

वे थोड़ी देर गुम-सुम बैठे रहे।

मैंने कहा, "देखिए जी, आप चाहें तो मैं पुरोहित हो जाता हूँ, और घंटे भर में शादी करा देता हूँ।"

वे चौंके। कहने लगे, "आपको शादी कराने की विधि आती है?"

मैंने कहा, "हाँ, ब्राह्मण का बेटा हूँ। बुज़ुर्गों ने सोचा होगा कि लड़का नालायक निकल जाए और किसी काम-धंधे के लायक न रहे, तो इसे कम-से-कम सत्यनारायण की कथा और विवाहविधि सिखा दो। ये मैं बचपन में ही सीख गया था।"

मैंने आगे कहा, "और बात यह है कि आज-कल कौन संस्कृत समझता है? और पंडित क्या कह रहा है, इसे भी कौन सुनता है? वे तो 'अम' और 'अह' इतना ही जानते हैं। मैं इस तरह मंगल श्लोक पढ़ दूँ तो भी कोई ध्यान नहीं देगा—

ओम जेक एंड जिल वेंट अप दी हिल टु फेच ए पेल आफ वाटरम्,
ओम जेक फैल डाउन एंड ब्रोक हिज़ क्राऊन एंड जिल केम टंबलिंग आफ्टरम्

कुर्यात् सदा मंगलम्.....

इसे लोग वैदिक मंत्र समझेंगे।"

वे हँसने लगे।

मैंने कहा, "लड़का उत्तरप्रदेश का कान्यकुब्ज और आप पंजाब के खत्री। एक-दूसरे के रिश्तेदारों को कोई नहीं जानता। आप एक सलाह मेरी मानिए। इससे कम में भी निपट जाएगा और नाक भी कटने से बच जाएगी। लड़के के पिता की मृत्यु हो चुकी है। आप घंटे-भर में शादी करवा दीजिए। फिर रिश्तेदारों को चिट्ठियाँ लिखिए—"इधर लड़के के पिता को दिल का तेज़ दौरा पड़ा। डाक्टरों ने उम्मीद छोड़ दी थी। दो-तीन घंटे वे किसी तरह जी सकते थे। उन्होंने इच्छा प्रगट की कि मृत्यु के पहले लड़के की शादी हो जाए तो मेरी आत्मा को शांति मिल जाएगी। लिहाज़ा उनकी भावना को देखते हुए हमने फ़ौरन शादी कर दी। लड़का-लड़की वर-वधू के रूप में उनके सामने आए। उनके चरणों पर सिर रखे। उन्होंने इतना ही कहा—सुखी रहो। और उनके प्राण-पखेरू उड़ गए। आप माफ़ करेंगे कि इसी मजबूरी के कारण हम आपको शादी में नहीं बुला सके। कौन जानता है आपके रिश्तेदारों में कि लड़के के पिता की मृत्यु कब हुई?"

उन्होंने सोचा। फिर बोले, "तरकीब ठीक है जी ! पर इस तरह की धोखाधड़ी मुझे पसंद नहीं।"

खैर, मैं उन्हें काम का आदमी लगा नहीं।

दूसरे दिन मुझे बाहर जाना पड़ा। दो-तीन महीने बाद लौटा तो लोगों ने बताया कि उन्होंने सामान और नकद लेकर शादी कर डाली।

तीन-चार दिन बाद से ही साहूकार सबेरे से तकादा करने आने लगे।

रोज़ उनकी नाक थोड़ी-थोड़ी कटने लगी।

मैंने पूछा, "अब क्या हाल है?"

लोग बोले, "अब साहूकार आते हैं, तो यह देखकर निराश लौट जाते हैं कि काटने को नाक ही नहीं बची।"

मैंने मज़ाक में कहा, "साहूकारों से कह दो कि इनकी दूसरी नाक पटियाला में पूरी रखी है। वहाँ जाकर काट लो।"

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. लड़की के पिता को अपनी नाक कट जाने का भय क्यों था?
2. लेखक ने बिगड़े रईस की तुलना किससे की है और किन कारणों से?
3. लेखक ने किन लोगों को दो नाक वाले कहा है और क्यों?
4. लड़की के पिता को लेखक काम का आदमी क्यों नहीं लगा?
5. बुज़ुर्ग ने लेखक की सलाह क्यों नहीं मानी और पुत्री का विवाह किस प्रकार किया?
6. दूर के रिश्तेदार का निमंत्रणपत्र मिलने पर लेखक क्यों घबरा उठता है?

लिखित

1. 'छोटे आदमी की नाक बहुत नाज़ुक होती है।' इसमें छोटा आदमी किन्हें कहा गया है और उनकी नाक नाज़ुक क्यों होती है?
2. 'नाक तो स्टील की है।' 'पर वे नाक तो तिजोरी में रखकर स्मगलिंग करने गए थे।' उपर्युक्त कथनों द्‌वारा लेखक ने अपराधी वर्ग की किस मानसिकता पर प्रहार किया है?
3. लेखक ने ब्राह्मण सज्जन के कथन पर यह टिप्पणी क्यों की 'नाक कटी नहीं है, कलम हुई है?'
4. 'बहुत से लोग एक परंपरा से छुटकारा पा लेते हैं पर दूसरी से बँधे रहते हैं।' यह वाक्य रईस प्रगतिशील बुज़ुर्ग पर किस प्रकार खरा उतरता है?
5. लेखक ने लड़की के पिता को उसकी नाक बचाने के लिए क्या-क्या उपाय सुझाए?

6. भारतीय मध्यवर्ग अपनी प्रतिष्ठा बचाने के प्रयत्न में जुटा रहता है। सोदाहरण टिप्पणी कीजिए।
7. इस पाठ के शीर्षक की सार्थकता पर टिप्पणी कीजिए और कोई अन्य उपयुक्त शीर्षक भी सुझाइए।
8. इस पाठ में किन-किन सामाजिक रूढ़ियों पर व्यंग्य किया गया है?
9. आशय स्पष्ट कीजिए–
   (क) नाक की हिफ़ाज़त सबसे ज़्यादा इसी देश में होती है।
   (ख) कुछ नाकें गुलाब के पौधों की तरह होती हैं।
   (ग) जो नाक रखते ही नहीं, उन्हे तो कोई डर ही नहीं। दो छेद है, जिनसे साँस ले लेते हैं।
10. इस लेख में लेखक ने छोटे-छोटे कथनों द्वारा अत्यंत पैने व्यंग्य किए हैं। ऐसे कुछ कथन चुनिए। उनमें से जो कथन आपको अधिक अच्छा लगा, उसमें निहित व्यंग्य पर प्रकाश डालिए।

भाषा-अध्ययन

1. निम्नलिखित मुहावरों का अपने वाक्यों में प्रयोग कीज़िए–
   नाक कटना, नाक रखना, नाक का बाल होना, नाक के नीचे होना, नाक घिसना, नाक चढ़ाना, नाक रगड़ना, नाकों चने चबवाना। .
2. निम्नलिखित शब्दों से बने विशेषण इस पाठ में आए हैं। उन्हें चुनकर लिखिए–
   जाति, भूख, खुशबू, प्रगति, क्रांति, वेद।

योग्यता-विस्तार

1. 'दोहरी मानसिकता और मध्य वर्ग' विषय पर निबंध लिखिए।
2. हरिशंकर परसाई की कुछ अन्य व्यंग्य रचनाएँ पढ़िए और उन पर कक्षा में चर्चा कीजिए।

शब्दार्थ- टिप्पणी

विजातीय	–	दूसरी जाति का
हैसियत	–	सामर्थ्य, आर्थिक क्षमता
कलाल	–	शराब बेचने वाली जाति विशेष
कलम करना	–	पुनः विकास के लिए काटना
गोल करना	–	गायब कर देना
लगन	–	शुभ मुहूर्त
नाबालिग	–	अवयस्क
बौखलाना	–	क्रोध से पागल हो जाना, आवेश में आना
कान्यकुब्ज	–	ब्राह्मणों का एक वर्ग

मुहावरे

तकादा करना	–	कर्ज़े की वापसी की माँग
नाक कटना	–	इज़्ज़त जाना
नाक होना	–	सम्मान, प्रतिष्ठा पाना

कमलेश्वर

कमलेश्वर का जन्म सन 1932 में मैनपुरी (उ.प्र.) में हुआ। उन्होंने इलाहाबाद से इंटर, बी.ए. तथा एम.ए. की पढ़ाई पूरी की। आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण उन्हें जीविका के लिए तरह-तरह के काम करने पड़े, जिनमें पुस्तक और पत्र-पत्रिकाओं की प्रूफ़रीडिंग से लेकर साइनबोर्ड पेंटिंग और ब्रुक बांड चाय के गोदाम की चौकीदारी भी शामिल है। बाद में कमलेश्वर ने 'विहान', 'नई कहानियाँ ', 'सारिका', 'श्रीवर्षा', 'कथायात्रा', 'गंगा' आदि पत्रिकाओं तथा 'जागरण' एवं 'भास्कर' आदि दैनिक पत्रों का संपादन किया। वे दूरदर्शन के अतिरिक्त महानिदेशक भी रहे।

कमलेश्वर ने आकाशवाणी और दूरदर्शन के लिए भी काफ़ी लिखा, नए कार्यक्रमों की शुरुआत की और टेलीफिल्मों का निर्माण किया। कमलेश्वर ने कलात्मक और व्यावसायिक फिल्मों के लिए भी काफ़ी लिखा।

कमलेश्वर की पहली कहानी 'कामरेड' सन 1948 में प्रकाशित हुई थी। तब से अब तक वे अपने लेखन में निरंतर सक्रिय हैं। कमलेश्वर ने सामाजिक असमानता, शोषण और वर्गीय असमानता के विरुद्ध खूब लिखा। वे यह मानते हैं कि साहित्य का कोई रूप मनुष्य से बड़ा या उससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं हो सकता।

राजा निरबंसिया, कस्बे का आदमी, खोई हुई दिशाएँ, माँस का दरिया, बयान, जार्ज पंचम की नाक, ज़िंदा मुर्दे, *आदि उनके चर्चित कथा संग्रह हैं।* ***एक सड़क सत्तावन गलियाँ, लौटे हुए मुसाफ़िर, डाक बंगला, समुद्र में खोया हुआ आदमी,***

काली आँधी, एक और चंद्रकांता, तीसरा आदमी, कितने पाकिस्तान आदि उनके उपन्यास भी चर्चित हुए हैं। **खंडित यात्राएँ** और **रात के बाद**, यात्रा संस्मरण भी पाठकों द्वारा सराहे गए हैं। **नई कहानी की भूमिका** और **मेरा पन्ना : समांतर सोच** उनकी आलोचना पुस्तकें हैं। **देश-देशांतर**,. **घटनाचक्र** और **सिलसिला थमता नहीं** आदि विविध विषयों से संबंधित पुस्तकें हैं। इसके अलावा उन्होंने अनेक पुस्तकों का संपादन भी किया है, जिनमें **मेरा हमदम मेरा दोस्त, गर्दिश के दिन** और विभिन्न भारतीय भाषाओं के कहानी संग्रह उल्लेखनीय हैं।

बर्फ़ के दरिया में साथ-साथ कमलेश्वर का रोचक यात्रा वृत्तांत है। यात्रा के रोमांच को शब्दों में उतारकर पाठक को भी रोमांचित कर देने की अद्भुत क्षमता इस वृत्तांत में है। हिंदी के तीन प्रतिष्ठित लेखक– मोहन राकेश, उपेंद्रनाथ अश्क और कमलेश्वर– कश्मीर के एक दुर्गम ग्लेशियर के निकट भटक गए थे। परिवेश की भयावहता और कदम-कदम पर खतरों से जूझने का वर्णन पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

बर्फ़ के दरिया में साथ-साथ

मोहन राकेश के कश्मीर पहुँचते ही यह तय हुआ कि उपेंद्रनाथ अश्क को श्रीनगर या पहलगाम में स्थापित करके हम दोनों कहीं और निकल जाएँगे—गुलमर्ग या किसी भी जगह ....हम बंजारों की तरह सिर्फ़ घूमेंगे और गप्पें लड़ाएँगे। अपने कलम होटल-मालिक के पास जमा करवा देंगे और लिखने-लिखाने का नाम नहीं लेंगे। जो लिखता हुआ पकड़ा जाएगा, वह दूसरे दिन के घूमने, नाश्ते और खाने का पूरा खर्चा उठाएगा। इस नियम में कोई परिवर्तन नहीं किया जाएगा और अश्क जी से बहुत सीरियसली कहा जाएगा कि वे अपना कीमती वक्त बरबाद न करें, अपनी सेहत का ख्याल रखने के साथ-साथ साहित्य की सेहत का भी ख्याल रखें और एक मोटा उपन्यास या नाटक हर हालत में पूरा करें। यह मुमकिन न हो, तो अगली महान रचनाओं की रूपरेखा बनाएँ। यानी अश्क जी साहित्य में रहें और हम कश्मीर में!

पर अश्क के भी जीवट का जवाब नहीं! कोल्हाई चलने के लिए वे सुबह-सुबह ही हम दोनों से पहले उठकर तैयार हो गए थे और चीख़ रहे थे – "यारो! नौ मील का रास्ता है...जल्दी नहीं चलोगे तो मारे जाओगे..।"

पिछले दिन के सफ़र ने काफ़ी थका दिया था। पहलगाम से आड़ू और आड़ू से लिद्दरवट। हम सुबह उठकर लिद्दरवट के डाक-बँगले से कोल्हाई के लिए चल पड़े।

सचमुच रास्ता बहुत भयानक था और खतरनाक भी। दाहिनी ओर लिद्दर नदी बह रही थी, उसका पानी चट्टानों के नीचे था, और जगह-जगह जहाँ चट्टानों के बीच में खाली जगह थी—एकाएक पानी के गहरे कुंड आ जाते थे, जिनमें गिर जाने के बाद निकलना संभव

ही नहीं था। कुछ दूर पहुँचने पर रास्ता सँकरा होने लगा। बाईं ओर टूटे हुए पत्थरों के पहाड़ आ गए। दाहिनी ओर दरिया के उस पार देवदार के पेड़ बंद छातों की तरह उगे हुए थे।

कुछ दूर पर ही भोजपत्र का जंगल आया। यादगार-स्वरूप हमने कुछ छाल उतार कर ओवरकोट की जेबों में रख ली। भोजपत्र के जंगल के आगे रास्ता कुछ साफ़ था। घाटी भी खुल गई थी। तभी आराम से चलते-चलते ममदू ने कहा, "साब, कोल्हाई के ऊपर एक दूधसर लेक होता। बहोत ख़ूबसूरत लेक है...कश्मीर का सबसे खूबसूरत लेक!"

हमने हामी भर दी। सतलंजन का मैदान सामने था। उल्टे तिकोन की तरह। यह मैदान बहुत खौफ़नाक था। कभी भी नालों में पानी बढ़ सकता था और पूरा मैदान गहरी झील में तब्दील हो सकता था। हम कुछ देर रुकना भी चाहते थे पर ममदू ने आगाह किया, "कुछ पता नहीं साब! हम यहाँ रुकने का सलाह नई देंगा...क्या पता कब नालों में पानी आ जाए और निकलना मुश्किल हो जाए। मालूम नई पड़ेगा कि ऊपर पहाड़ पर पानी आ गया है। जल्दी-जल्दी पार करने का, साब!"

शायद ममदू कुछ ज़्यादा ही डरा हुआ था पर अनजानी जगहों में जानकारों की गैरज़रूरी बातों को भी मानना पड़ता है।

फिर पथरीली और बेहद पतली घाटियों में होते हुए हम एक ऐसी जगह पहुँच गए जहाँ से आगे का कोई रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था। तीनों तरफ़ के पहाड़ सिमसिम की तरह बंद थे। सिर्फ़ वापस जाने वाला रास्ता खुला हुआ था। हम लोग रुक गए। ममदू ने आगे बढ़कर बताया, "इधर दाहिनी तरफ़ दर्रा है ... इसी दर्रा में दो मील आगे कोल्हाई ग्लेशियर है। उदर उसके पास तक कोई नई जा सकता। इदर मोड़ पर मुड़ते ही बरफ़ नदी दिखाई पड़ेगा और बरफ़ का छोटा-सा झील जिससे लिद्दर का दरिया निकलता है ..."

चारों ओर सन्नाटा था। एक चिड़िया तक कहीं नहीं थी। तीनों ओर नीले-नीले पहाड़ खड़े थे। जैसे वे बर्फ़ीली हवाओं से नीले पड़ गए हों! ऊपर आसमान साफ़ था। घड़ी देखी तो साढ़े ग्यारह बज रहे थे। हम तीनों ही खामोश थे। वीरान सौंदर्य चारों ओर बिखरा हुआ था।

नदी की धारा उथली थी पर बहुत तेज़। जंगल पीछे छूट गए थे। घास और ठिगनी झाड़ियों के अलावा और कुछ नही था वहाँ। हलकी नीली, हरी और सिलेटी चट्टानों के पहाड़ संन्यासियों की तरह चुप खड़े थे।

हम सब दर्रे की ओर बढ़ गए। दाहिनी ओर मुड़ते ही तिलस्म का दरवाज़ा खुल गया और सामने फिर एक मैदान आ गया। दूर पर कोल्हाई ग्लेशियर गाय की बेहद चौड़ी जीभ की तरह ज़मीन पर पसरा हुआ था और उस झील से बर्फ़ीले पानी की पचास-साठ छोटी-बड़ी धाराएँ निकल रही थीं यही लिद्दर नदी का स्रोत था। हम ढलवाँ पहाड़ों पर बाई ओर खड़े थे। ग्लेशियर पर धूप सतरंगी होकर चमक रही थी और बर्फ़ की छोटी-बड़ी नुकीली चोटियाँ बर्फ़ के मुकुटों की तरह दमक रही थीं। रोशनी की आभा उन पर पड़कर लौट रही थी और घाटी के सामने वाले पहाड़ चकाचौंध हो रहे थे।

घड़ी चार बजा रही थी और पहाड़ियों की शृंखलाएँ जो परदे की तरह उठती जा रही थीं, खत्म ही नहीं हो रही थीं। अश्क भी हताश-से थे। मैं भी बुरी तरह ऊबा-ऊबा हुआ था। घोड़े और घोड़े वाले वहीं नीचे छूट गए थे। सिर्फ़ ममदू साथ था। आखिर अश्क ने कड़ी आवाज़ में ममदू से पूछा, "किधर है तुम्हारा दूधसर?"

"बस, पहाड़ी के उस पार!" ममदू ने बड़ी आसानी से कहा और आगे बढ़ने लगा। उसकी पीठ पर कुछ ज़रूरी सामान बँधा हुआ था, इसलिए वह भालू की तरह मटक-मटक कर चल रहा था।

आखिर बुरी तरह लस्त होकर जब हम एक ऊँचाई पर पहुँचे तो सारी थकान धुल गई थी। नीचे पहाड़ों से घिरी दूधसर झील नगीने की तरह चमक रही थी! पानी दूध की तरह निर्मल था। चारों ओर एकदम खामोशी थी। निर्जन एकांत! उसके पानी पर बर्फ़ के सिंहासन तैर रहे थे और सिंहासनों के आस-पास बर्फ़ के ही हंस जैसे टुकड़े! झील के पानी की ठंडक से ही पहाड़ों के पैरों पर धूल की तरह बर्फ़ जमी हुई थी। झील की रोशनी पहाड़ों पर पड़ रही थी और पहाड़ों की छाया झील में! तैरते बर्फ़ की बर्छियाँ भी थीं। नुकीली, चमचमाती। कुछ तैरते

टुकड़े बर्फ़ के पौधों की तरह लग रहे थे। उनकी छोटे-छोटी शाखाएँ शीशे की तरह चमक रही थीं।

ऊपर से डबडबाई शांत आँख की तरह लग रही थी दूधसर झील! साँप की आँख जैसा सम्मोहन था उसमें। मैं चुपचाप नीचे उतर गया। नीचे उतरते ही एक बादल आकर शामियाने की तरह तन गया ऊपर! मैं कुछ देर आँखें बंद किए बैठा रहा। एक अंजलि पानी भरा और पी गया। भीतर तक सर्दी की लहर दौड़ती चली गई।

मैं देखता रहा —बर्फ़ के श्वेतपंखी हंस धीरे-धीरे तैर रहे थे। जमी हुई बर्फ़ की छाया चाँदी की चादर की तरह उसके जहाँ-तहाँ खुल गए वक्ष से नीचे तल तक लहरा रही थी। राकेश भी नीचे आकर पास से झील को देखता रहा था।

इस वक्त तक छह बज गए थे। लेकिन झील की शांति और सुंदरता ने किसी तरह का तनाव नहीं रहने दिया था। अब हम झील से बाई ओर की पहाड़ियाँ पार करते हुए उस रास्ते की खोज में आगे बढ़े, जो सीधा कोल्हाई पर उतरता था। वक्त के हिसाब से देश के अन्य भागों में शाम होनी शुरू हो गई होगी, पर उन पहाड़ियों पर उतना उजाला था कि अभी शाम का एहसास नहीं हो रहा था।

इसके बावजूद उस ऊँचाई से कोल्हाई ग्लेशियर का दृश्य अद्भुत था! ग्लेशियर पर अभी भी काफ़ी रोशनी थी। दोनों तरफ़ काले पड़ गए पहाड़ों के बीच बर्फ़ का वह दरिया मीलों लंबी सफ़ेद चादर की तरह पड़ा था। लगता था, दिन में उस दरिया ने उजाला सोखकर रात में अपने इस्तेमाल के लिए जमा कर लिया था ...बर्फ़ के दरिया पर जगह-जगह सदियों से जमी काली बर्फ़ की गोट लगी थी। बीच में साफ़, सफ़ेद चमचमाती बर्फ़ की चूने की चौड़ी सड़क थी। जगह-जगह बर्फ़ की मीनारें खड़ी थीं... खंडहरों की तरह। जैसे कोई बहुत बड़ा और विशाल बर्फ़ का महल ध्वस्त हो गया हो और उसके खंभे और मीनारें रह गई हों, मीलों दूर तक खड़ी। बर्फ़ के वे जबड़े सुंदर भी थे और भयानक भी। उन पर कोहरा लिपटा हुआ था जो ठहरे हुए धुएँ की तरह काँपता था। लगता था, ग्लेशियर साँस ले रहा है! दोनों ओर

थे पहाड़ और हमारी साँसें बंद थीं। सोखा हुआ उजाला कब खत्म हो गया पता ही नहीं चला। शाम अब रात में बदल चुकी थी।

आसमान पूरी तरह काला पड़ गया था। रात कितनी भयानक हो सकती है, इसका पहला एहसास हो रहा था ...कि तभी वह दुर्घटना हुई –

मैं अपने को सँभाल नहीं पाया और बजरी वाले एक चिकने ढलान से फिसल गया। बारह-चौदह फुट नीचे यदि एक चौरस चट्टान न होती तो शायद हड्डियाँ भी न मिलतीं। मैं उस चट्टान पर आ गिरा था। मौत का झटका लगा था। काफ़ी देर मैं सन्नाटे में पड़ा रहा था। आखिर जब कुछ हिम्मत बँधी तो देखा—बजरी से ऊपर जाने का कोई तरीका नहीं था। अब सिवा नीचे उतरने के कोई चारा नहीं था। नीचे टूटी हुई चट्टानें थीं—पर कोई विकल्प नहीं था। चट्टानें इतनी भारी ज़रूर थीं जो दस पाँच आदमियों का बोझ सँभाल सकती थीं, वे बर्फ़ीले अंधड़ की मार से ही खिसकती थी। मैंने नीचे उतरना शुरू किया था, यह स्वीकार करके कि कोई भी क्षण मौत का क्षण हो सकता है। ग्लेशियर तक की उतराई करीब तीन सौ फुट थी। जैसे-तैसे मैं ग्लेशियर की तराई में पहुँच गया।

मैंने ऊपर देखा—राकेश, अश्क और ममदू कहीं नज़र नहीं आ रहे थे। कहीं वे लौट न गए हों, सोचते ही मेरे रोंगटे खड़े हो गए थे। अभी तो सामने पड़ा पूरा ग्लेशियर पार करना था ...बर्फ़ीले जबड़ों में से जाना था, तब कहीं जाकर उस पार रास्ता मिलेगा। भय से मेरा शरीर ठंडा पड़ता जा रहा था। बर्फ़ का दरिया सामने साँस ले रहा था। बर्फ़ पर से जाती हवा में अजीब-सी गूँज थी। तभी मेरा आधा शरीर सुन्न पड़ गया था। मैंने चाकू निकाल कर काली चट्टान को खोदा तो बर्फ़ की चीपें उतर आईं। वे सदियों से जमी बर्फ़ की काली चट्टानें थीं जिन पर मैं खड़ा था। बाहर जमा देने वाली ठंड थी और सामने बर्फ़ का दरिया पड़ा था।

प्रकृति की रौद्र सुंदरता मेरे सामने थी। आखिर मैंने आवाज़ लगाई, "राकेश.....!"

बर्फ़ की गुफ़ाओं से टकराकर आवाज़ गूँजती-गूँजती शायद ऊपर उठती गई और खो गई।

तभी राकेश की आवाज़ कुछ क्षणों के बाद लहराती-लहराती नीचे आई, "कमलेश्वर .....!"

आवाज़ों का यह अद्‌भुत खेल इतना विचित्र था कि मन सहमता भी था और सँभलता भी था, क्योंकि कोई नज़र नहीं आ रहा था। सिर्फ़ आवाज़ जाती थी और कहीं से दूसरी आवाज़ आती थी। आवाज़ को जाते और आते देखा जा सकता था!

तभी तीन सौ फुट ऊपर तीन धब्बे दिखाई दिए। सिग्नल देने के लिए मैंने अपना रूमाल जलाकर हिलाया ताकि वे जान जाएँ कि मैं नीचे पहुँच चुका हूँ!

आवाज़ों को हम देखते रहे। जलता हुआ रूमाल देखकर राकेश ने आवाज़ लगाई,"हम आ रहे हैं।"

रूमाल की रोशनी में वह आवाज़ देर तक नज़र आती रही।

रात के साढ़े नौ बज चुके थे। अब हमें ग्लेशियर पार करना था! दियासलाइयाँ, चाकू, सिगरेटें और टार्चें हमारे पास थीं। उन्हीं का सहारा था। बर्फ़ की नदी पार करने के लिए मूँज के जूते और नुकीली छड़ियाँ नहीं थीं। छड़ियों की कमी वहीं एकाध उगे हुए ठिगने पेड़ों के डंठल काट कर पूरी कर ली गई। यह भी अचरज की बात थी कि सरल डंठलों वाले दो छोटे पौधे वहाँ थे।

हम उठे और ग्लेशियर पार करने के लिए पहला कदम उठा। ममदू फिसलते-फिसलते बचा। सध कर हम आगे बढ़े। अभी आठ-दस कदम ही गए होंगे कि ग्लेशियर की एक नाली सामने आ गई। वह नाली दो-ढाई फुट चौड़ी थी, पर उसे पार करना एक मसला था। शीशे की तरह चिकनी सतह पर एक पैर से सँभलने और दूसरा पैर उस पर जमने तक के समय में फिसल जाना मामूली बात थी। हम हर जगह पैरों को बर्फ़ में घुमा-घुमा कर जब थोड़ा-सा पकड़ने वाला गड्ढा बना लेते थे, तभी दूसरा पैर आगे रखने की जुर्रत कर पाते थे, क्योंकि यह स्नो नहीं था, यह सख्त चिकनी बर्फ़ की ढलवाँ-सी चादर थी, जिस पर हम चल रहे थे। उस पतली नाली में एक इंच से ज़्यादा पानी नही था, पर उसकी ठंडक से पिंडलियाँ तक थर्रा जाती थीं। आखिर ममदू ने उसकी चिकनी सतह में पैर रखकर, घुमा-घुमाकर साँचा-सा बना दिया और उस साँचे में पैर रखकर हम तीनों पार हो गए।

मृत्यु का संकट अभी टला नहीं था। आगे के रास्ते की कोई खबर हमें नहीं थी। अभी तो ग्लेशियर ही पार नहीं हुआ था।

मैं तारीफ़ ही करूँगा अश्क जी के होशो-हवास की। उन्होंने ममदू के हाथ से एक टार्च ले ली और उसे इधर-उधर घुमाकर-घुमाकर वे न जाने क्या देख रहे थे। टार्चों के सैल जवाब दे रहे थे, पर वे इधर-उधर बजरी पर बार-बार रोशनी डालते और कुछ उठाकर अपने ओवरकोट की जेब में रख लेते। बजरी दिखाई देने लगी थी, यह इस बात का सबूत था कि हम ग्लेशियर के पार आ गए थे।

हमारी समझ में कुछ नही आया था। राकेश अपनी टार्च बुझा कर धीरे-धीरे हँस रहा था। वह शायद बात समझ गया था। तभी ममदू बोला, "साब! रोशनी बचाकर रखना है। अबी बहोत लंबा रास्ता है। बीच में दलदल भी पड़ सकता है ..."

"सरदियों में जमी बर्फ़ में दबकर कुछ पत्थर बहुत कीमती बन जाते हैं।"अश्क जी ने कहा था। राकेश यह सुनकर बेसाख्ता हँस पड़ा था।

हमारे पैर दो-दो मन के हो गए थे। अब उनसे शरीर और कपड़ों का बोझ उठ नहीं रहा था। दलदल पार करके हम सुस्ताने लगे थे। मौत की बर्फ़ीली वादी से हम ज़रूर निकल आए थे पर अँधेरी घाटियों, सतलंजन के मैदान, पानी से भरे खतरनाक कुंडों में जंगली जानवरों के ख़तरों से अभी हम पार नहीं हुए थे।

जैसे-तैसे हम उस जगह पहुँच गए जहाँ घोड़े वालों को छोड़ कर गए थे। आधी रात हो चुकी थी। हमें ख़त्म हो गया समझकर वे लौट गए थे। रुकने के लिए कोई जगह नहीं थी।

ऊपर से बारिश आ गई थी। गनीमत थी कि हम सतलंजन का मैदान पार कर आए थे... अब ऊबड़-खाबड़ रास्ता आ गया था, जिसके नीचे जगह-जगह पानी के कुंड थे। अंधों की तरह संभल-संभलकर चलने के अलावा कोई चारा नहीं था। ममदू सब खतरे उठाता हुआ आगे-आगे चल रहा था, उसकी आवाज़ आ रही थी, "हिम्मत कर, साहबा! होश साहबा! संभल के, साहबा!"

इसी आवाज़ के सहारे हम चल रहे थे...कहीं कोई रोशनी नहीं, कहीं कोई पगडंडी नहीं, कोई रास्ता नहीं, कोई सहारा नहीं ...बस, ममदू की आवाज़ गूँजती थी। उसी का सिरा पकड़कर हम चलते जा रहे थे। रोशनी की एक झलक के लिए हम तरस रहे थे।

पता नहीं चलते-चलते कब दूर पर एक लौ-सी दिखाई पड़ी। ममदू चीखा, "कोई बस्ती है, साहबा!"

दिशा और समय का अब कोई एहसास नहीं रह गया था। हम सिर्फ़ उस जलती मशाल की ओर खिंचे जा रहे थे। जब वह रोशनी बिलकुल पास आई तो कुछ-कुछ दिखाई पड़ा। वह लिद्दरवट का डाक बँगला ही था।

चौकीदार ने हमें खत्म हुआ मान चुकने के बाद भी भेड़ के घी की मशाल जला रखी थी कि कहीं भटकते-भटकते अगर हम लोग आ ही जाएँ तो रोशनी देखकर उधर निकल आएँ। चौकीदार बोला था, "हम समझा, खतरा हो गया...इस वास्ते मशाल डाक बँगले के कोने से बाँध दिया ..."

हम लोग कमरे में पहुँचते ही कटे पेड़ की तरह गिर पड़े। कीचड़ भरे बूटों और भीगे ओवरकोटों सहित। अब होश नहीं था। सुबह के पाँच बजे हुए थे।

शाम सात बजे कुछ होश आया था। चौकीदार ने ब्रांडी की मालिश की थी। आधी बेहोशी में ही शायद कुछ खा-पीकर हम फिर सो गए थे।

सुबह आँखें ठीक से खुली थीं। चौकीदार चाय ले आया था। जब हम चाय पी रहे थे, तब देखा—किचिन के पास कोने में चाय पीता ममदू चुपचाप बैठा था।

मैंने चौकीदार से कहा, "अरे! ममदू अभी यहीं है!"

तो चौकीदार बोला, "कल दोपहर से ही बैठा है, साब! बोलता है, साहब लोग को सलाम करके जाएगा!"

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. राकेश के कश्मीर पहुँचते ही क्या तय हुआ?
2. लेखक तथा राकेश के साथ अश्क जी भी कश्मीर आए थे। फिर लेखक ने यह क्यों कहा कि अश्क जी साहित्य में रहें और हम कश्मीर में?
3. अश्क जी का साहस किस बात से प्रकट हो रहा था?
4. लेखक ने 'अनजानी जगहों में जानकारों की गैर ज़रूरी बातों को भी मानना' ज़रूरी क्यों समझा?
5. दूर से कोल्हाई ग्लेशियर कैसा लग रहा था?
6. बुरी तरह थक जाने के बाद भी सारी थकान अपने आप कैसे धुल गई?
7. लेखक किस प्रसंग के संदर्भ में अश्क जी के होशो-हवास की तारीफ़ कर रहा था?

लिखित

1. प्रकृति के रूपों का सौंदर्य व्यक्त करने में कहीं 'वीरान' और कहीं 'रौद्र' विशेषण का प्रयोग किया गया है। क्यों?
2. दूधसर लेक के सौंदर्य का अपने शब्दों में वर्णन कीजिए।
3. लेखक ने कोल्हाई ग्लेशियर के दृश्य को 'अद्‌भुत' क्यों कहा है?
4. 'कि तभी वह दुर्घटना हुई ...।' लेखक का यह कथन किस दुर्घटना की ओर संकेत करता है? दुर्घटनाग्रस्त लेखक की मनःस्थिति का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
5. स्पष्ट कीजिए:
   - साँप की आँख जैसा सम्मोहन था उसमें।
   - लगता था ग्लेशियर साँस ले रहा है।
   - आवाज़ को जाते और आते देखा जा सकता था।
6. ग्लेशियर की नाली पार करने के लिए लेखक और उसके साथियों ने क्या-क्या युक्तियाँ अपनाईं?

7. इस यात्रा वृत्तांत में लेखक ने प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन करते हुए अनेक उपमाओं का प्रयोग किया है। उनमें से कोई तीन ऐसी उपमाएँ चुनिए जो आपको अधिक अच्छी लगी हों। अच्छा लगने के कारणों का भी उल्लेख कीजिए।
8. लेखक ने किन प्रसंगों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि प्रकृति की मोहक सुंदरता मानव की सारी थकान, चिंता, तनाव आदि को दूर कर देती है?
9. ममदू की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

भाषा-अध्ययन

1. 'कीमती वक्त', 'मोटा उपन्यास' जैसे अन्य दो विशेषण-विशेष्यों के उदाहरण दीजिए।
2. निम्नलिखित कथनों को मानक हिंदी वाक्यों में लिखिए –
   – साब! ... कोल्हाई के ऊपर एक दूधसर लेक होता।
   – साब! .. हम यहाँ रुकने का सलाह नई देंगा।
   – जल्दी-जल्दी पार करने का, साब!
   – साब! रोशनी बचाकर रखना है। अबी बहोत लंबा रास्ता है।

योग्यता-विस्तार

अपने जीवन में घटित अथवा आपके द्वारा पठित किसी रोमांचक यात्रा वृत्तांत को कक्षा में सुनाइए और उसे रोमांचक मानने के कारणों पर चर्चा कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

सीरियसली – गंभीरतापूर्वक
सेहत – स्वास्थ्य
जीवट – साहस
हामी भरना – स्वीकार कर लेना
खौफ़नाक – डरावना
ग्लेशियर – हिम-नद – ऐसी पहाड़ी नदियाँ जिनमें ऊपर से बर्फ़ की परत जमी रहती है। इसे ही लेखक ने बर्फ़ का दरिया कहा है।

तिलस्म	–	जादुई लोक
लस्त	–	थक कर चूर होना
एहसास	–	अनुभूति
गोट	–	मगजी, कपड़े की दुहरी पट्टी जो सुंदरता के लिए कपड़ों के किनारे लगाते हैं
रोंगटे खड़े होना	–	रोमांच होना, भयभीत होना
चीपें	–	परतें
जुर्रत	–	साहस
बेसाख्ता	–	अनायास, अचानक, अपने आप

पैर दो-दो मन के हो गए – पैर सूज जाना

वादी	–	घाटी, नदी के किनारे का मैदान
सिमसिम	–	अरब देश की एक लोक कथा – 'अलीबाबा चालीस चोर' में गुफ़ा का दरवाज़ा 'खुल जा सिमसिम' कहने पर खुलता था और 'बंद हो जा सिमसिम' कहने पर बंद होता था। प्रस्तुत पाठ के संदर्भ में आशय यह है कि पहाड़ों तक पहुँचना संभव नहीं था।

विद्यानिवास मिश्र

पं. विद्यानिवास मिश्र का जन्म गोरखपुर ज़िले के पकड़डीहा ग्राम में सन 1926 में हुआ। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए. और गोरखपुर विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। प्रारंभ में सरकारी पदों पर रहे। 1957 में उन्होंने गोरखपुर विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य आरंभ किया। फिर काशी विद्यापीठ और बाद में संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय में कुलपति पद पर सुशोभित हुए। आप नवभारत टाइम्स के प्रधान संपादक भी रहे।

पं. विद्यानिवास मिश्र संस्कृत और हिंदी दोनों भाषाओं के मर्मज्ञ हैं। उनकी रचनाओं में बड़ी विविधता है। भाषा संस्कृतनिष्ठ होते हुए भी प्रवाहपूर्ण है। उन्होंने यथाप्रसंग लोकभाषा के शब्दों का भी प्रयोग किया है। मिश्र जी को निसर्गतः कवि का हृदय मिला है। इसकी छाप उनके गद्य पर भी पड़ी है। उनके अधिकांश निबंध ललित शैली के हैं।

उन्हें 'महाभारत का काव्यार्थ' पुस्तक पर मूर्तिदेवी पुरस्कार (1990) से, भारत सरकार द्वारा पद्मश्री से तथा बिड़ला फाउंडेशन के शंकर सम्मान से विभूषित किया गया है।

मिश्र जी की कुछ प्रमुख पुस्तकें हैं — ***साहित्य की चेतना, रीति विज्ञान, महाभारत का काव्यार्थ, निज मुख मुकुर, लागो रंग हरी, तुलसी मंजरी, भाव पुरुष श्री कृष्ण, परंपरा बंधन नहीं, द इंडियन क्रिएटिव माइंड, सोहम्, कबीर वचनामृत, नदी, नारी और संस्कृति, फागुन हुई रे दिना, शिरीष की याद आई, भारतीय चिंतनधारा*** *तथा* ***सपने कहाँ गए।***

प्रस्तुत पाठ श्री मिश्र द्‌वारा लिखा गया एक संपादकीय है। इस पाठ में लेखक ने तीन पर्वों – विजयादशमी, कोजागरी और दीपावली का उल्लेख किया है और उनके सांस्कृतिक महत्त्व तथा सार्थकता पर प्रकाश डाला है। विजयादशमी के प्रसंग में रावण पर राम की विजय को, अन्याय के ऊपर न्याय की विजय दिखाते हुए लेखक ने संकेत दिया है कि आज ऐसी ही विजय-यात्रा की आवश्यकता है जिसमें अन्याय को नष्ट करने का संकल्प लिया जाए।

विजयोत्सव

यह अंक जिस महीने में निकल रहा है उस महीने में विजयादशमी, कोजागरी और दीपावली तीन-तीन पर्व पड़ रहे हैं। विजयादशमी के दिन राम ने रावण पर विजय प्राप्त की। अन्याय के युग के अंत का अर्थ यह पर्व है। यह पर्व आश्विन शुक्ल की दशमी को पड़ता है। कोजागरी आश्विन शुक्ल पूर्णिमा को मनाई जाती है। इस दिन रात भर लक्ष्मी घर-घर झाँकने जाती हैं, इसी को शरद पूर्णिमा भी कहते हैं। इस रात्रि में लोग खीर पकाकर छत पर रखते हैं और चाँदनी की वर्षा में खीर रात भर सिंचती रहती है। यही खीर सवेरे लोग इस भाव से ग्रहण करते हैं कि अमृत से यह सिक्त हो गई है। कार्तिक कृष्ण अमावस्या को दीपावली पड़ती है। इसे लोग इस भाव से मनाते हैं कि इस दिन राम का अयोध्या में राज्याभिषेक हुआ था और वहाँ घर-घर दीप जलाए गए थे। इस खुशी में आज भी घर-घर दीप जलाए जाते हैं।

हम विजय की बात करते हैं। उसका अर्थ क्या है? क्या यह आधिपत्य है, अथवा यह कोई अपने लिए किसी वैभव की प्राप्ति है? यदि हम ध्यान से प्राचीन दिग्विजयों का वर्णन पढ़ें तो तीन बातें स्पष्ट होती हैं। एक तो, इन दिग्विजयों का उद्देश्य आधिपत्य स्थापित करना नहीं रहा है। कालिदास ने एक शब्द का प्रयोग किया है – 'उत्खात- प्रतिरोपण' यानी उखाड़कर फिर से रोपना। जैसे धान के बीज बोए जाते हैं, और पौधे होने पर उखाड़कर पास के खेत में रोपे जाते हैं। ऐसा करने से धान की फ़सल बोए हुए धान की अपेक्षा दुगुनी होती है। इसमें दुर्बल पौधे अपने-आप नष्ट हो जाते हैं और सबल पौधे अधिक सबल होते हैं। यह उस क्षेत्र के हित में होता है जिसको जीतकर पुनः उसी क्षेत्र के सुयोग्य शासक को सौंपा जाता है। इससे उस क्षेत्र की दुर्बलताएँ अपने आप नष्ट हो जाती हैं और उसकी शक्ति और अधिक उभर कर आ जाती है।

इसमें दूसरी बात यह निहित थी कि किसी सामान्य जन को सताया नहीं जाए, उसकी खेती न नष्ट की जाए। युद्ध उस भूमि पर हो जो ऊसर हो– और युद्ध से केवल सैनिक प्रभावित हों, साधारण जन को कोई हानि न हो। उन दिनों युद्ध में मारे गए सैनिकों को जीतने वाला पक्ष पूरा सम्मान देता था। विभीषण किसी भी प्रकार रावण की चिता में अग्नि देने के लिए तैयार नहीं हो रहे थे। राम ने कहा कि वैर मरने के साथ समाप्त हो जाता है। रावण तुम्हारे बड़े भाई थे, इसीलिए मेरे भी बड़े भाई थे, इनका उचित सम्मान के साथ अंतिम संस्कार करो।

तीसरी बात यह थी कि दिग्विजय का उद्देश्य उपनिवेश बनाना नहीं था, न अपनी रीति-नीति आरोपित करना था। भारत के बाहर जिन देशों में भारत का विजय अभियान हुआ उन देशों को भारत में मिलाया नहीं गया, उन देशों की अपनी संस्कृति समाप्त नहीं की गई, बल्कि उस संस्कृति को ऐसी पोषक सामग्री दी गई कि उस संस्कृति ने भारत की कला और साहित्य को अपनी प्रतिभा में ढालकर उसको कुछ और सुंदरतर रूप में खड़ा किया। 'कंपूचिया में अंकोरवाट' और 'हिंदेशिया में बोरोबुदुर' तथा 'प्रामवनम्'– इसके जीवंत प्रमाण हैं, जहाँ पर अपनी संस्कृति के अनुकूल उन देशों के लोगों ने भारतीय धर्म-संस्कृति को नया रूप प्रदान किया। एक उद्देश्य यह अवश्य था कि नाना प्रकार के रंगों से इंद्रधनुष की रचना हो। चक्रवर्ती होने का अर्थ यही था कि एक चक्र के अनेक अरे मिलकर गतिशील हों और एक-दूसरे की सहायता करें, एक-दूसरे के साथ सामंजस्य रखें।

प्रश्न है कि केवल राम का ही विजयोत्सव क्यों इतना महत्त्वपूर्ण है? उसके बाद अनेक विजय-अभियान हुए। वे इतने महत्त्वपूर्ण क्यों नहीं हुए? उनका उत्सव इस तरह क्यों नहीं मनाया जाता? इसका समाधान यही है कि राम की विजय यात्रा में राम की सहायक वन की वानर व भालू जातियाँ थीं। अयोध्या से कोई सेना नहीं आई थी। यह अकेले 'एक निर्वासित का उत्साह' था, जिसने राक्षसों से आक्रांत अत्यंत साधारण लोगों में आत्मविश्वास भरा और रथहीन होकर भी रथ पर चढ़े रावण के विरुद्ध लड़ाई लड़ी। ऐसी यात्रा से ही प्रेरणा लेकर गांधीजी ने स्वाधीनता के विजय-अभियान में जिन चौपाइयों का उपयोग किया वे 'रामचरितमानस' की हैं – "रावनु रथी बिरथ रघुबीरा, देखि विभीषन भयउ अधीरा।" ऐसी

विजय में किसी का पराभव नहीं होता, राक्षसों का पराभव नहीं हुआ, केवल रावण के अहंकार का संहार हुआ। अंग्रेज़ों की सभ्यता को नेस्तनाबूद करने का कोई प्रयत्न भी नहीं हुआ, केवल उनका प्रभुत्व समाप्त करके जनता का स्वराज्य स्थापित करने का लक्ष्य रहा। इसलिए विजयादशमी आज विशेष महत्त्व रखती है।

हम खेतिहर संस्कृति वाले भारतवासी आज भी नए जौ के अंकुर अपनी शिखा में बाँधते हैं और उसी को हम जय का प्रतीक मानते हैं। आने वाली फ़सल के नए अंकुर को हम अपनी जय यात्रा का आरंभ मानते हैं। हमारे लिए विजय-यात्रा समाप्त नही होती, यह फिर से शुरू होती है, क्योंकि भोग में अतृप्ति, भोग के लिए छीनाझपटी, भय और आतंक से दूसरों को भयभीत करने का विराट अभियान, दूसरों की सुख-सुविधा की उपेक्षा, अहंकार, मद, दूसरों के सुख में ईर्ष्या— ये सभी जब तक होंगे, चाहे कम हों या अधिक, 'बिरथ रघुवीर' को विजय यात्रा के लिए निकलना ही पड़ेगा। आत्मजयी को इन शत्रुओं के ऊपर विजय प्राप्त करने के लिए नया संकल्प लेना ही होगा।

विजयादशमी के दिन लोग नीलकंठ पक्षी देखना चाहते हैं। नीलकंठ सुंदर-सा पक्षी है। गला उसका नीला होता है। उस पक्षी में लोग विषपायी शिव का दर्शन करना चाहते हैं। आत्मजयी जब विजय के लिए निकलेगा तो उसे बहुत-सा गरल पीना पड़ेगा। यह गरल अपयश का है, लोक-निंदा का है और सबसे अधिक अलोकप्रियता का है। आज इस गरल को पीने के लिए कोई तैयार नहीं है।

विजयादशमी का उत्सव सार्थक होता है दक्षिण से उत्तर की राम की वापसी यात्रा से। इसमें राम रास्ते में अपने मित्र ऋषि भरद्वाज से मिलते हैं और अपने मित्र निषादराज से मिलते हैं, गंगा फिर से पार करते हैं। अंत में पहले भरत से मिलते हैं फिर अयोध्या में प्रवेश करते हैं और वे सिंहासन पर आसीन होते हैं। वस्तुतः जन-जन के मन में वनवासी राम तो राजा ही थे। केवल सिंहासन पर आसीन नहीं हुए थे। किंतु सिंहासन पर उनकी पादुका आसीन हुई थी। उनके प्रतीक चिह्न से शासन चल रहा था। भरत तो अपने को न्यासधारी मानते थे। महात्मा गांधी उसी प्रकार की स्थिति में जनता के शासक को देखना चाहते थे। शासन तो

सनातन राम का है। उनकी तरफ़ से प्रतिनिधि होकर, धरोहरी होकर शासन चलाना ही जनतंत्र के शासन का लक्ष्य होना चाहिए। राम का राज्याभिषेक सत्य का राज्याभिषेक है, सात्विक ज्ञान का राज्याभिषेक है।

अमावस्या की रात्रि सबसे घनी अँधेरी रात्रि होती है। उस दिन पावस के चार महीनों का सारा तम असंख्य-असंख्य कीट-पतंग बनकर एक बार छोटे-छोटे दीयों के प्रकाश से अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति के भीतर में जगती हुई रोशनी से जूझना चाहता है और जूझते-जूझते ही समाप्त हो जाता है।

पूर्वी भारत में दीपावली का यह पर्व कालीपूजा के रूप में मनाते हैं। काली, मोह और मद को मूल से उच्छिन्न करनेवाली देवी हैं। इसीलिए यह पर्व ज्ञान के जागरण का पर्व है। हज़ारों वर्षों से इसी दिन भारत की अर्थव्यवस्था सँभालने वाले लोग हिसाब-किताब पूरा करते थे और आज भी कर रहे हैं। यह आर्थिक वर्ष की समाप्ति की तिथि हुआ करती थी। यह आज भी आनुष्ठनिक रूप में है। आज भी यह तिथि व्यवसाय की सच्चाई की नाप-जोख की तिथि है। यह अलग बात है कि नाप-जोख भी अब सच्ची नहीं रह गई है। अब दो-दो बहियाँ काम में आने लगी हैं – एक खुली, एक पोशीदा। शायद दीपावली के ये दीये, विशेष रूप से मिट्टी के दीये और स्नेह से बल पाकर रोशनी देनेवाले दीये, अपनी लौ– अपनी काँपती हुई लौ से स्मरण दिलाना चाहते हैं कि सच्चाई का कोई आवरण नहीं होता। होता भी है तो वह टिकता नहीं है। उसको दूर करने के लिए आवाहन होता रहता है। प्रकाश के देवता सत्य का मुँह सुनहले ढक्कन से ढका हुआ है। उसे उतार दो। उसे अपने आप चमकने दो। इस दीपावली के एक दिन पहले नरक़ चतुर्दशी होती है और नरकासुर की कैद से हज़ारों राजाओं की बेड़ियाँ खोलने की खुशी भी मनाई जाती है।

दीपावली के दिन आज भी मिट्टी के खिलौने, मिट्टी के गणेश, मिट्टी की लक्ष्मी, मिट्टी की टुन-टुन बजती घंटियाँ, पटाखों के हाहाकार से कहीं अधिक सुंदर मधुर और प्रीतिकर लगती हैं। अतिभोग के दिखावे में, खोखले ऐश्वर्य के दिखावे में इन सबको किनारे करने की साज़िश की गई है और इस साज़िश ने बच्चों से लेकर बूढ़ों तक का मन वश में

कर रखा है। पर आज भी हिंदुस्तान की नारी अपने घर में अनाज से भरे बरतन प्रयोग करती है, मिट्टी का ही दीया जलाती है, धान की खीलों से मिट्टी के ही लक्ष्मी-गणेश की पूजा करती है। लगता है संस्कृति का कोई एक कोना अभी सुरक्षित है, जहाँ मन की पवित्रता, सच्चाई और कलासृष्टि के प्रति संवेदना बची हुई है। विजयोत्सव की यही शुभ परिणति होनी चाहिए और ऐसी भावनाओं से भरे विजयोत्सव की हम अपने पाठकों को बधाई देते हैं।

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. लेखक ने किन तीन पर्वों का उल्लेख किया है?
2. कोजागरी पर्व की क्या विशेषता है?
3. 'उत्खात-प्रतिरोपण' किसलिए किया जाता है?
4. प्राचीन दिग्विजयों का क्या उद्देश्य था? ठीक उत्तर के सामने सही (√) का चिह्न लगाइए–
   (क) सामान्य जन को हानि न पहुँचाना।
   (ख) आधिपत्य स्थापित करना।
   (ग) दूसरों की संस्कृति को बनाए रखना।
   (घ) अपनी रीति-नीति लागू करना।
5. चक्रवर्ती होने का क्या अर्थ है?
6. विजयादशमी के दिन लोग नीलकंठ पक्षी क्यों देखना चाहते है?

लिखित

1. राम की विजय यात्रा की तुलना में अन्य विजय अभियान इतने महत्त्वपूर्ण क्यों नहीं हुए?
2. 'एक निर्वासित का उत्साह' में निर्वासित किसे कहा गया और क्यों?
3. रावनुरथी बिरथ रघुवीरा – रावण पर राम की विजय से महात्मा गांधी को स्वतंत्रता संग्राम के लिए क्या प्रेरणा मिली?
4. आत्मजयी को किन शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनी होती है?

5. महात्मा गांधी के अनुसार जनतंत्र के शासक को कैसा होना चाहिए?
6. दीपावली को ज्ञान के जागरण का पर्व क्यों कहा गया है?
7. दीपावली के दीयों की कॉपती लौ क्या स्मरण दिलाती है?
8. निम्नलिखित कथन को पढ़िए और पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए —
   'अमावस्या की रात्रि सबसे घनी अंधेरी रात्रि होती है। उस दिन पावस के चार महीनों का सारा तम असंख्य-असंख्य कीट-पतंग बनकर एक बार छोटे-छोटे दीयों के प्रकाश से प्रत्येक व्यक्ति के भीतर में जलती हुई रोशनी से जूझना चाहता है और जूझते-जूझते समाप्त हो जाता है।'
   (क) अमावस के दिन पावस का सारा तम क्या रूप धारण कर लेता है?
   (ख) लेखक ने व्यक्ति के अंतर्मन के प्रकाश की उपमा किससे दी है?
   (ग) यह तम किससे संघर्ष करता है?
   (घ) इस संघर्ष मे तम की पराजय क्यो होती है?
9. आशय स्पष्ट कीजिए —
   (क) आने वाली फ़सल के नए अंकुर को हम अपनी जय यात्रा का आरंभ मानते है।
   (ख) लगता है संस्कृति का कोई कोना अभी सुरक्षित है।

भाषा-अध्ययन

1. नीचे कुछ तत्सम एवं तद्‌भव शब्द दिए गए हैं। तत्सम शब्दों के तद्‌भव और तद्‌भव शब्दों के तत्सम रूप लिखिए —
   दशमी, अँधेरा, सुनहला, पूर्णिमा, अग्नि,महीना, दीपावली, मिट्‌टी, रात्रि, दीया।
2. निम्नलिखित शब्दो के संधिविच्छेद कीजिए —
   राज्याभिषेक, उच्छिन्न, विजयोत्सव, दिग्विजय।

योग्यता -विस्तार

1. लेखक के अनुसार 'कंपूचिया में अंकोरवाट' और 'हिंदेशिया में बोरोबुदुर' तथा 'ग्रामवनम्' इस बात के जीवंत प्रमाण है कि इन देशों के लोगों ने भारतीय संस्कृति को अपनी संस्कृति के अनुकूल बनाकर नया रूप प्रदान किया। इस संदर्भ में अतिरिक्त जानकारी प्राप्त कीजिए।
2. इस पाठ मे विजय यात्रा के संदर्भ में दो प्रसंगों 'बिरथ रघुबीरा' और 'एक निर्वासित का उत्साह' का उल्लेख हुआ है। ये प्रसंग क्रमशः तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' और जयशंकर प्रसाद रचित 'चंद्रगुप्त' नाटक से लिए गए हैं। इन प्रसंगो से संबंधित अंशों को पढ़कर प्रस्तुत पाठ में इनकी उपयुक्तता पर कक्षा में चर्चा कीजिए।

3. भारतीय महीनों के नाम और उन महीनों मे मनाए जाने वाले प्रमुख पर्वों की जानकारी प्राप्त कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

आधिपत्य	—	प्रभुत्व, पूर्ण नियंत्रण
उपनिवेश	—	वह विजित देश जिसमें विजेता देश के लोग आकर बस गए हों
(अर) अरे	—	चक्र (पहिये) की तीलियाँ
सामंजस्य	—	तालमेल
निर्वासित	—	देश से निकाला हुआ
पराभव	—	हार
नेस्तनाबूद	—	समूल नष्ट, पूरी तरह समाप्त करना
आत्मजयी	—	जिसने स्वयं पर विजय पा ली हो
गरल	—	विष
पादुका	—	खड़ाऊँ
न्यासधारी	—	धरोहर रखनेवाला, जिसे विश्वासपूर्वक संपत्ति सौंपी जाए
उच्छिन्न	—	नष्ट
आनुष्ठानिक	—	विधि-विधान से कोई कार्य संपन्न करना
(बही) बहियों	—	खाता, हिसाब-किताब लिखने का रजिस्टर
पोशीदा	—	गुप्त
आवरण	—	परदा, ढाल
आवाहन	—	पुकार, बुलाना
साज़िश	—	षडयंत्र
संवेदना	—	अनुभूति
परिणति	—	अंत, परिणाम
नरकासुर	—	एक असुर जिसका वध श्रीकृष्ण ने किया था

उषाकिरण खान

उषाकिरण खान का जन्म सन 1945 में दरभंगा (बिहार) के लहेरिया सराय में हुआ। प्राचीन इतिहास और पुरातत्व में एम.ए., पीएच.डी. तक शिक्षा प्राप्त कर मगध विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य प्रारंभ किया और प्राचीन इतिहास विभाग के विभागाध्यक्ष पद को सुशोभित किया।

लेखन में उषाकिरण की रुचि प्रारंभ से ही रही। अध्यापन के साथ-साथ ये लेखन में भी सक्रिय रहीं। हिंदी के अतिरिक्त इन्होंने मैथिली को भी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया और दोनों भाषाओं की चर्चित कथा-लेखिका हैं। आपकी प्रख्यात कृतियाँ हैं— ***विवश विक्रमादित्य, दूब-धान, गीली पाँक, कासवन****। ये सभी कथा-संग्रह हैं। 'फागुन के बाद' आपका चर्चित उपन्यास है। आपकी कहानियाँ 'धर्मयुग', 'सारिका' और 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में भी प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके अतिरिक्त* ***दूर्वाक्षत, अनुत्तरित*** *एवं* ***हसीना मंज़िल*** *इनकी मैथिली कृतियाँ हैं।*

उषाकिरण खान का लेखन सोद्देश्य लेखन है। समाज से बटोरे गए अनुभव, विकास की धीमी प्रक्रिया से भी अधिक धीमी गति से सरकने वाली शिक्षा के कारण वंचित मानवता एवं अधकचरी अर्थव्यवस्था का दुष्परिणाम भोग रही ग्रामीण जनता के भावों की अभिव्यक्ति इनके लेखन का आधार हैं। उषाकिरण खान की कथाओं में आंचलिक शब्दों की मधुरिमा और सहज भावाभिव्यक्ति है। उनके पात्र इसी समाज और परिवेश के हैं। नारी पात्रों के चित्रण में वे सिद्धहस्त हैं। उनकी कथाओं की संवेदना पाठक को बाँध लेती है।

दूब-धान *भी बिहार के आंचलिक परिवेश की पृष्ठभूमि में लिखी गई कहानी है। महानगरीय औपचारिक बोझिलता और आधुनिकता से नायिका ऊब जाती है। वह बचपन की स्मृतियों से जुड़े गाँव को फिर से देखना चाहती है। उन्मुक्त ग्रामीण परिवेश, सहज, सरल आत्मीय रिश्ते और प्रकृति की गोद में की गई अठखेलियाँ उसे गाँव की ओर खींचतें हैं।*

गाँव जाने का अवसर मिलता है। किंतु वहाँ स्मृतियों में बसा गाँव नहीं मिलता। शहरी आधुनिकता वहाँ भी डेरा डाल चुकी है। केतकी निराश होकर लौटने लगती है। अचानक उसे सबुजनी की याद आती है। वह लौटते समय रास्ते में गाड़ी रोककर गाँव में सबुजनी से मिलने के लिए जाती है। वह सबुजनी से क्या मिलती है कि उसे अपना वह पुराना गाँव मिल जाता है जिसकी चाह उसे गाँव खींच लाई थी। पुरानी रस्मों की महक, आत्मीयता की गरमाहट और अपनत्व का सुख उसकी यात्रा को सार्थक कर देता है।

दूब-धान

मंज़िल पर पहुँचने से पहले गाड़ी की रफ़्तार तेज़ हो गयी थी, और अब एक तीखी आवाज़ सीटी की आ रही थी, अर्थात् स्टेशन नज़दीक है। वैसे तो केतकी ने जब से गाँव आने का कार्यक्रम बनाया तभी से उसकी नींद उड़ गयी थी, लेकिन छोटी लाइन की गाड़ी पर चढ़ते ही आँखों ने थकान का अनुभव भी भुला दिया था। प्रसन्नता के अतिरेक में केतकी बावरी हो गयी थी। रात के लगभग एक बज रहे थे जब गाड़ी स्टेशन पर लग रही थी। कितने वर्षों के बाद केतकी अपने गाँव की दहलीज पर आ रही थी। यह अवसर बड़ी मुश्किल से मिला था। चार भाइयों की ड्योढ़ी में अकेली लड़की केतकी अपनी भतीजियों-भतीजों की हमउम्र थी। पिता के दो विवाह हुए थे। पहली पत्नी से चार लड़के थे और दूसरी से थी केतकी। जब केतकी गर्भ में थी तभी उसके पिता का स्वर्गवास हो गया था और किशोरी माता के संबंध में सुनने में आता है कि विधवा होने के बाद वे केतकी को जन्म देने मात्र के लिए ही जीवित थी। बड़ी भाभी ने केतकी को अपनी बेटी की तरह पाला था। पालन-पोषण में कोई त्रुटि नही आने दी थी। पंद्रह वर्ष की केतकी ब्याह कर ससुराल चली गयी थी। उसके श्वसुर महानगर में रहते थे, गाँव-घर से कोई मतलब ही नहीं था। केतकी भी वहाँ चली गई थी। गाँव के एक-एक पंछी से बिछुड़ते केतकी का हृदय फटता था, किंतु नए वातावरण का आकर्षण उसे जीवित रखे था।

इस बीच में कितने परिवर्तन आए। केतकी के भाइयों का मकान शहरों में बन गया। सभी भाई नगराभिमुख हो गए। सबसे बड़े भाई चीफ़ इंजीनियर के पद तक पहुँच गए हैं। सभी के शादी-ब्याह शहरों में ही हुए। मुहल्ले की शादियों की तरह केतकी आती और ब्याह का

न्यौता पूरा कर चली जाती। पशु-पक्षियों और ग्रामीण जन से अधिक घुली-मिली यह दीवानी लड़की यदि गॉव के संबंध में कुछ पूछती भी तो माकूल उत्तर नही मिल पाता। एक बार बड़ी भाभी से कहा भी था इसने, "भाभी, गाँव में कोई समारोह करिए, काफ़ी दिन गए हो गए।" तो भाभी ने उत्तर दिया था, "गाँव में सड़कें बन रही हैं, घर तैयार हो रहे हैं, फिर देखूँगी।" केतकी ने यूँ ही कई बार अपने पति से भी कहा था, "एक बार अपने गाँव जाने का मन करता है।" तो उन्होंने यह कहकर टाल दिया था, "गाँव में कौन रहता है?" केतकी क्या कहे कि गॉव में कौन रहता है उसका! भाई-भाभी और भतीजे-भतीजियाँ नहीं रहते हैं तो क्या, पूरा-का-पूरा गाँव उसका अपना है। वह एक क्षण के लिए भी गॉव को भूल नहीं पाती है। बच्चों की छुट्टियों में संपूर्ण भारत का भ्रमण भी उसे संतुष्ट नहीं करता, महानगर के पास के साफ़-सुथरे कंक्रीट की सड़क वाले गाँव उसका खालीपन नहीं भर पाते। आभिजात केतकी को गाँव के लोगों के द्वारा केतिकी पुकारना याद आता, और याद आता कोसी का मिट्टी-पानी, कोर-कछार, उसके समय में जो नवगछुली बंबई और मालदह आम का लगा था, वह कितना विस्तृत हो गया होगा, यह सोच कर केतकी प्रसन्न होती। थोड़ा-सा भी समय मिलेगा तो वह ज़रूर उस पर झूला लगवा लेगी। क्या हुआ माघ है, तो अब झूला लगाने के लिए कोई सावन का इंतजार तो नही करने देगा केतकी को। "देखा तुमने, बड़ी भाभी की चिट्ठी आई है कि अब की समीर के बेटों का जनेऊ गाँव में ही करेंगी," केतकी ने कहा था। "अच्छा तो है, अब उनके गॉव तक सड़कें चली गई हैं। घर भी ठाठ का बन गया है।"

"क्या ऐसी ही सड़कें?"

"और नहीं तो क्या, पगली?" केतकी क्षण-भर को उदास हो गई थी। फिर सोचा था, अच्छा ही तो है, अब गाड़ी सीधे घर के दरवाज़े पर पहुँचेगी। पहले बैलगाड़ी और नाव की सवारी करनी पड़ती थी। उसे याद आया, कैसे गौने के बाद उसकी बारादरी उठाकर नाव पर रखी गई थी और वह नदी पार कर अपनी ससुराल के घर में देवी को शीश नवाने पहुँची थी। चार दिन की विधि पूरी करते ही उसकी सास उसे लेकर महानगर चली गई थीं। तब से केतकी ने कभी इधर का मुख नहीं किया। अपने दरवाज़े से नीचे उतर कर सामने कोसी नहीं

देखी, सुनहरी-रुपहली अबरकों वाली सिकता नहीं देखे, काश और पटेर के जंगल नहीं देखे, आम की पीपें घिसकर सीटी नहीं बजाई। केतकी ने सीकी की डलिया में मूढ़ी-लाई नहीं खाए और ना ही सीकी के बने कंगन, बाजूबंद खेल-खेल में सबुजनी से बनवा कर पहने। क्या सबुजनी ज़िंदा होगी? केतकी सोचती है और उसका मन दौड़कर धुनिया टोली पहुँच जाता है। गोरे-चिट्टे धुनिया मज़ूदर और गुलाबी रंगतोंवाली उनकी औरतें। केतकी उन्हें देखती ही रह जाती। और यह सबुजनी कितनी सुंदर थी! गाँव की बेटी थी, गाँव में ही बस गई थी। सो वह घर-घर मुँह उघार कर घूमती रहती थी, गहरे नीले-हरे-बैंजनी मारकीन के चूने लिखे चूनर, गोरे मुखड़े पर लाल कान और कान में ऊपरी छोर से क्रम से लटकती पाँच-पाँच चाँदी की बालियाँ। छम-छम करते गहने जौसन-बाजू तक और रुपैया का छड़। जहाँ बैठती, झन-झन बजता। सबुजनी की बड़ी पूछ बड़े घरों में थी। वह सीकी की रंग-बिरंगी सुंदर-सुंदर डलिया बनाती थी। उससे सीखने वालों का तांता लगा रहता। सबुजनी की दो बेटियाँ फूल और सत्तो ब्याह कर ससुराल जाने-आने लगी थीं और बेटा रहीम कुदाल कंधों पर रखने लगा था। उसी से केतकी सीकी का बाला-झुमका बनवाकर पहनती थी और फिर तोड़कर फेंक देती थी। सबुजनी लाड़भरी झिड़की देकर फिर रँगी सीकी से केतकी के लिए कंगना बनाने लगती थी। केतकी को सबुजनी का ज़ोर से केतकी ई ई पुकारना याद आता है। कैसी रची-बसी थी गाँव की सहिष्णु संस्कृति उसमें! वह विधर्मी होने पर भी जीतिया और छठ करती। छठ की डलिया में सिर्फ़ फल-फूल देख कर एक बार केतकी ने टोका तो उसने कहा था, 'मेरे हाथ का पकाया हुआ भोजन सूर्य देवता कैसे करेंगे, इसलिए फल-फूल लेकर अर्ध्य चढ़ाती हूँ।'

"ऐसे देवता को क्यों अर्ध्य चढ़ाती हो, छूत मत चढ़ाओ।" केतकी ने आवेश में कहा था। जीभ काट कर कान पकड़ते हुए सबुजनी ने ऐसा बोलने से मना किया। और डाँट भी बतायी। कहा, "छिमा माँग लो, देवता-पितर के बारे में ऐसा नहीं कहते।" तब लाख यह समझाने पर कि वह कैसे जानती है भगवान किसका खाते हैं, किसका नहीं, वह कुछ सुनने को तैयार नही थी। जैसे निर्मल सौंदर्य की स्वामिनी थी वह, वैसा ही उसका हृदय भी था। जाने अब यदि वह जीवित होगी भी तो कैसे होगी। होगी भी या नहीं, कौन जाने? उसके पास कोई

अपनी ज़मीन तो होती नही थी कि एक स्थान पर टिके रहें। जहॉ रोजी मिली होगी, वहीं चली गई होगी। नेहर की मिट्टी खाकर कोई जी सकता है क्या? खाएगा तो अनाज ही। ज़मीन वाले ही कोन अब ज़मीन पकड़ कर बैठे रहते हैं? उससे असीमित आवश्यकताएँ कहाँ पूरी पड़ती हैं? केतकी के ही एक भाई चीफ़ इंजीनियर हैं, दूसरे डॉक्टर और बाकी दो बड़े ठेकेदार। सबकी कोठियाँ राजधानी में बनी हैं। बच्चों की शादियॉ भी वैसी ही हुई हैं। और केतकी के पति भी तो उतनी बड़ी संस्था के विज्ञापन मैनेजर हैं। मोटी तनख्वाह, गाड़ी, महानगर में अपना मकान। मैट्रिक पास केतकी ने महानगर में ही रह कर एम.ए., पीएच. डी. कर लिया। देश-विदेश घूमने से ही फुरसत नही मिलती। छुई-मुई-सी केतकी, फूल की तरह कोमल, अब गदरा कर भव्य महिला हो गई है। गाँव जाना है, यह सुन कर ही उतावली हो गयी थी केतकी। अपने वार्डरोब में देखा--- एक भी सूती प्रिंट या तांत की साड़ी नहीं थी यहाँ, सिंथेटिक के सिवा कोई सूती पहनता भी नहीं। महरी भी सूती साड़ियाँ धोना-कलफ़ देना नही जानती। हाउसकोट तक केतकी के पास इंपोर्टेड थे। पति के ऑफिस जाने के बाद सीधी वह राजस्थान इंपोरियम चली गयी और कुछ सूती रंग-बिरंगी चुनरें खरीद लाई। बड़े स्टील के तहवाले बक्से के नीचे रखी हुई थी उसकी वह पीली विष्णुपुरी साड़ी, उसे निकाल कर बहुत देर तक हाथ फेरती रही उस पर। लगा कैशोर्य के कोमल सपनों को सहला रही है। इसे ही जनेऊ के दिन पहनेगी केतकी। आलता-बिछुआ और लौंग पहन कर कैसी लगेगी इस विष्णुपुरी साड़ी में-कल्पना में देर तक डूबी रही थी केतकी।

गाड़ी स्टेशन पर आ गई है। चाँदनी रात है लेकिन घनी धुंध जमी है। स्टेशन की इमारत भव्य लगती है। पहले यूँ ही-सी थी। नई बनी लगती है। इस इलाके के कई प्रभावशाली नेता मंत्री बनते रहे हैं, तो यह भी न हो? गाड़ी लेकर एक चचेरा भाई आया है। कुछ वर्ष पहले यही फटी चादर और धोती के सहारे जाड़ा काटता था, किंतु अब ऊनी कोट-पैंट पहने है। गाड़ी में सामान रख कर उसने पूछा कि क्या इतनी रात को गाँव चलना ठीक होगा? केतकी चाहे तो सर्किट हाउस भी रिज़र्व कराया गया है, वहीं रह जाए। लेकिन केतकी तो उतावली थी, उसने बेसाख्ता कहा, "नहीं, नहीं, अभी गॉव जाऊँगी, गाड़ी है, कितनी देर लगेगी!" गाँव

पहुँच कर देखा, एक कतार में एक ही डिज़ाइन के चार मकान है। चारों मकानों को चारों ओर से ऊँची दीवार ने घेर रखा है और बड़ा-सा लोहे का दरवाज़ा है, जहॉं ठीक शहरी तरीके का दरबाननुमा जीव बैठा है। रात और धुंध के कारण और अधिक कुछ न देख सकी थी। चचेरे भाई ने पहले मकान का कोने वाला कमरा स्वयं खोला और केतकी का सामान रख दिया।

"तुम लोग सो जाओ, सुबह सबसे मुलाकात होगी," कह कर वह चला गया। केतकी ठगी-सी रह गई। गौने के बाद यह दूसरी बार गॉंव आयी है। गाँव में इतना परिवर्तन? बड़ा चचेरा भाई स्वयं कमरा खोल कर बहन और जीजा जी को सो जाने को कह रहा था, बेटी के आने पर प्रतीक्षारत बैठे कहाँ गये स्वजन-पुरजन, कहाँ है जुड़ाने को रखा हुआ बड़ी-भात और कहॉं गयी वह परंपरा, जिसमें पहले देवी की विनती किए बिना किसी घर में पैर नहीं रखा जा सकता था? पथराई-सी खड़ी केतकी पति के टोकने पर सामान्य हुई। कई दिनों-रातों का जागरण और मकड़ी की तरह स्वयं के सत्त्व द्वारा बुने जाते तारों का खंडित दंश केतकी को बेहद थका गया था। वह जो सोई सो काफ़ी दिन उग आने के बाद जग सकी। जल्दी-जल्दी कमरे के अटैच्ड बाथरूम में स्नान कर बाहर निकली। "वाह, साले लोगों ने तो मकान बड़ा कंफर्टेबुल बनवा लिया है। इसमें तो रवि, हनी भी आकर रह सकते हैं।" पति ने प्रशंसात्मक नज़रों से चारों ओर देखते हुए कहा।

"हॉं, बिलकुल सही, बल्कि ज़्यादा अच्छा है। इतना खूबसूरत टाइलों और ग्रिलोंवाला मकान शहरों में भी कम ही देखने में आता है।"

"खुद इंजीनियर साहब का कमाल है," हँसते हुए पति भी बाथरूम की ओर बढ़ गए। भैया ने सारी सुविधाएँ दे रखी हैं इस कमरे में, सोचती है केतकी। यह तो सर्किट हाउस या डाक बँगले से कम नहीं है। उसे अब संकोच हो रहा था कैसे अंदर की ओर जाए। किधर से जाए। उसे लिवाने कोई नहीं आ रहा है। तभी दरवाज़े की घंटी बजी। उठ कर देखा तो बारह-तेरह साल की एक बच्ची थी, "आप ही केतकी दीदी हैं?" सुंदर चटख रंगों का जाँघों से ऊपर फ्राक और उलझे बाल। यह शायद काम करने वाली है कोई। उसे देख कर केतकी मुसकराई, "हाँ!"

"तो चलिए, बड़ी काकी बुला रही हैं।" लगा पक्षियों का कलरव सुन रही है केतकी।

"चल," झट से खड़ी होकर लगभग दौड़ती हुई उस बालिका के पीछे चल पड़ी वह। ग्रिल से घेरे हुए बरामदे को पार करती हुई केतकी ने देखा, बड़े से हॉलनुमा कमरे में भाभियाँ बैठी थीं। केतकी ने बारी-बारी से सबों के पैर छुए। चाय पीते हुए उसने गौर किया, जाड़े में भी घर की नवीन सदस्याएँ कम कपड़े पहने हुए हैं, ऊपर से शरीर शाल से ढका हुआ है, यही गनीमत।

"तुम रात देर से आई। मैंने रामविलास से कह दिया था कि तुम लोगों को गेस्टरूम में ठहरा दे। कोई परेशानी तो नहीं हुई? नीद तो आई?" बड़ी भाभी ने औपचारिक आत्मीयता से पूछा।

"आपके राज में कोई कमी नहीं भाभी," कह कर केतकी नए लोगों से परिचय पाने में व्यस्त हो गई। गाजा-बाजा, रोशनी, सब कुछ था। कहीं कोई झंझट नहीं। कोई काम किया जा रहा था, ऐसा नहीं लग रहा था, ऐसा लगता था मानो सारा काम आपसे आप हो रहा हो। सागर की लहरें जैसे आती हैं, और चली जाती हैं, वैसे ही सारे रस्म-रिवाज़, संस्कार।

"यह केतकी है?" एक वृद्धा ने नज़दीक आकर पूछा।

"हाँ, अभी मैंने पैर छुए थे आपके," केतकी ने सफ़ाई दी।

"कम दीखता है बेटी," उसने कहा, "बेटी", "तुम्हें जमाय बाबू मानते हैं न?" उसकी ऑखों में संदेह लहरा रहा था। वह चुटकियों में केतकी की साड़ी पकड़े हुए थी।

"हाँ, क्यों?" केतकी अचंभित हो उठी।

"तूने कैसी साड़ी पहन रखी है। देख तो वे सब कैसी पहने हैं। फिर तू तो बड़े घर-वर से ब्याही थी।" अब केतकी को लगा कि उसने सचमुच ग़लती की जो भड़कदार आधुनिक साड़ियाँ नहीं लाई। भाभी लोगों के सामने तो आँखें चुरा ही रही थी, गाँव की इन वृद्धा के सामने भी लज्जित हो गयी।

शुभ-शुभ कर यज्ञोपवीत का कार्यक्रम समाप्त हुआ। केतकी अपने गाँव को देखने की लालसा को न्योत लाई। "भाभी, जरा गाँव देखती।" केतकी ने बड़ी भाभी से पूछे बिना कभी घर से पैर बाहर नहीं निकाला था। वे मुसकराईं, "ठीक है, देख आओ, तुम बदली नहीं जरा भी।" केतकी ने उसी छोटी लड़की को साथ लिया और चल पड़ी। बड़ी-सी चारदीवारी के बाहर भी चौड़ी कंक्रीट की सड़क। चंद कदमों पर पनबिजली निकालने वाला विशाल यंत्र, विद्युत-ग्राम। अब उसे यज्ञोपवीत के दिन की वह शहरी पार्टी भी याद आयी। उसे सचमुच उस दिन उतनी सारी कॉस्मोपोलिटन स्त्रियों को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ था, और काँटे-छुरी से भरी उस पार्टी को देखकर मन जाने कैसा-कैसा हो गया था। यह सब शो गाँव में नहीं होना चाहिए था, उसने सोचा। लेकिन एक प्रश्न मन में बना ही रहा था कि इतने सारे कॉस्मोपोलिटन लोग कहाँ से आए, यहाँ गाँव में?

"दीदी, यहाँ बिजली बनाते हैं। देखती हैं न, सब जगह गाँव में बिजली है।" साथ की लड़की पुलकित थी।

"तुझे बिजली अच्छी लगती है?"

"हाँ, बहुत! खूब इजोत होता है।"

"अच्छा?" और केतकी मेंड़ों के सहारे खेत में उतर गई। मटर और तीसी के खेत। सफ़ेद, नीले और गहरे गुलाबी खेत। आगे सरसों और तोड़ी के खेत, पीले-पीले फूलों वाले खेत। केतकी कुछ सोचती हुई नीचे उतरती रही। प्रकृति के पास सबसे अनूठे रंग हैं।

"केतकी दीदी, इधर गाँव नहीं है, फुलवारी है।" साथ की लड़की ने कहा।

"मैं फुलवारी ही जाऊँगी।" और थोड़ी देर में केतकी पुरानी अमराई में पहुँच चुकी थी। फुलवारी कई चारदीवारियों में बँटी थी। कई नए वृक्ष लगे थे। लड़की ने बताया कि चारों भाइयों की फुलवारी है। चलती हुई केतकी बीच में पहुँच गई। एक पुराना महुआ का पेड़ कटा पड़ा था। पास ही आम का एक विशाल छायादार पेड़ था।

"दीदी, यह आप ही का पेड़ है," लड़की ने याद दिलाया।

"तुझे कैसे मालूम?" केतकी ने पूछा।

"सभी कहते हैं कतिकी दाई का पेड़।"

"ओ, अच्छा!" इसी पेड़ के नीचे केतकी, संज्ञा, कालिंदी, बुच्ची और रमा खेला करती थीं। लड़कों का झुंड बगलवाले महुए के पास जमता था। अकसर लड़कों से इन लोगों का झगड़ा ही रहता था। यही समीर कितना शैतान था। एक बार महुए का ताज़ा फल लेकर केतकी की नाक में रगड़ दिया था, केतकी बेहोश हो गयी थी। बाद में इसी बात पर चिढ़ाया भी करता था समीर कि केतकी महुए की गंध से ही बेहोश हो गई थी। पेड़ कितना ऊँचा और छायादार है, केतकी सोच रही थी। यह पेड़ सबसे पहले फलता है। लाल-लाल सेन्हुरिया आम पक-पक कर आप ही चूने लगते हैं। अधिक पके आम धरती पर गिरते ही फट जाते हैं, छिलका और बीज अलग-अलग। ज़ोर की आवाज़ से ध्यान भंग हुआ। चारदीवारी से निकल कर देखने लगी केतकी। कौन दहाड़ा इतनी ज़ोर से? देखा, सरसों, तीसी, मटर के खेतों के पारवाले खेत में ट्रैक्टर चल रहा है। दूर-दूर तक कहीं हल-बैल नहीं दीखते।

"बड़का काका का खेत है, मकई के लिए तैयार हो रहा है। मेरा बाबू डिरेवर है।" लड़की ने गर्व से बताया। अचानक वातावरण मशीन की दहाड़ से भर गया। कलेजा धक-धक कर उठा केतकी का। अपने को संभालते हुए उसने पूछा उस लड़की से, "तुम किसकी बेटी हो?"

"रामप्रीत की।"

"बैजू तुम्हारा दादा था?"

"हाँ।" केतकी को स्मरण हो आया। बैजू उन लोगों का अगला हलवाहा था। सिरपंचमी के दिन पसेरी-भर धान के बिना हल ही नहीं उठाता था। उसके लिए अइपन का थड़ बड़ा बनाना पड़ता। पीठ पर पिठार सिंदूर का थप्पा लिये दिन-भर घूमता रहता। कहता, केतकी

दाई का असिरबादी है। मन में आया, पूछें कि क्या ट्रैक्टर भी सिरपंचमी में अइपन चढ़ता है? फिर स्वयं ही अपने आप पर हँसी आ गई। वह मन-ही-मन नचारी गुनगुनाने लगती है—

"अमिय चूबिय भूमि खसत, बाघंबर जागत हे।

आहे होयत बाघंबर बाघ, बसहा धरि खायत हे।"

शिव को पार्वती नृत्य करने के लिए कहती हैं, फिर अपना डर पार्वती से बताते हैं कि उनके नाचने से अमृत बूँदें बाघंबर पर गिरेंगी, बाघंबर बाघ बन जायेगा और बसहा बैल को खा जाएगा।

विज्ञान का शिव-तांडव। अमृत बूँद से जमा यंत्र-व्याघ्र गरज रहा है खेतों में। लौट पड़ती है केतकी।

"कल चलते हैं न हम लोग?" रात को पति से कहा।

"क्यों, तुम तो कुछ दिन और रुकने वाली थीं?" पति ने प्रतिप्रश्न किया।

"नहीं, चलूँगी।"

"ठीक है। मुझे क्या एतराज हो सकता है!"

दूसरे दिन केतकी के जाने की सारी तैयारी हो गई। भाई-भाभियों के चरण छू सूखी आँखों से वह गाड़ी में बैठ गई। रामविलास आगे था, केतकी और उसके पति पीछे। गाड़ी थोड़ी देर में हवेली छोड़ कर आगे बढ़ गई। गाँव पास आ पहुँचा। कंक्रीट की ऊँची सड़क के किनारे मिट्टी के टीले पर बसा गाँव। ओखल-मूसल चलाती औरतें। अधनंगे, नाक बहाते बच्चे।

लाल रंग डोलिया सबुज रंग ओहरिया

अचके में लगलै कहार

गोर लागी पैया पड़ी भैया कहरिया

पल एक दियउ बिलमाए।

"रामविलास भैया, गाड़ी रोकिए न," केतकी उतावली होकर कह उठी। गाड़ी रोककर रामविलास पीछे देखने लगा।

"मैं ज़रा गाँव में जाऊँगी," वह झट से उतर कर सड़क से जुड़ी पगडंडी से उतर गई। पीछे-पीछे रामविलास मुसकराता हुआ चला। पहला ही घर तो सबुजनी दीदी का है। सामने खजूर की चटाई पर बैठी थी सबुजनी।

"के है?" मोतियाबिंद उतरी आंखों पर तलहथी देकर देखने लगी वह।

"दीदी, मुझको नही पहचाना?"

"दीदी, केतकी है," रामविलास ने कहा, "जरा भी नहीं बदली।"

केतकी के मन में तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। इन्हीं से मिलने तो वह आई थी, इन्ही के लिए मन व्याकुल था।

"बाबू, केतिकी समीर बौआ के बेटा के जनेऊ में आई है?"

केतकी बोल नहीं पा रही थी। रामविलास ने ही कहा, "हाँ, अभी लौटकर जा रही है।" सबुजनी के गोरे झुर्रीदार चेहरे पर हर्ष की लहर दौड़ गई।

"अच्छा हुआ, ग्राम-समाज को देखने आ गई। तू बिना माँ की बेटी हम सबकी बेटी थी। अरे, कहाँ गई सुलेमान की कनियां? ज़रा सोना सिंदूर ले आ। केतकी की माँग भर। एक चुटकी धान-दूब ले आ, खोंइछा भर दे।" भीड़ जैसा समां हो गया था। एक बहू दौड़कर अंदर से सारा सामान ले आई। भाभी तो खोंइछा देना भी भूल गई थीं। रेशमी आँचल की खूँट आप-से-आप खुल गई। इसी दूब-धान के लिए मन उदास था, लगता है।

"मेहमान कहाँ है बेटी?" सबुजनी ने पूछा।

"गाड़ी में हैं," अब रामविलास चिढ़ने लगा था, "ट्रेन छूट जाएगी!"

"अच्छा, अच्छा, जैनबी जा, तूने जो नया सीकी का पौती बुना है, ले आ..."

"और सुन। गिलास मॉज कर पानी और गुड़ की भेली भी ले आ।" कमर से निकालकर दो रूपए का मुड़ा-तुड़ा नोट पौती में बंद कर केतकी के हाथों में थमा दिया। "यह

मेहमान का सलामी है। दे देना। गुड़ खा ले बेटा, पानी पी ले। ज़रा ठीक से। हॉ, जा, गाड़ी को देर हो रही है। देख लिया तुझे, सुख-चैन से मरूँगी।" आगे बढ़कर सबुजनी गले मिलने को हुई कि उद्भ्रांत-सी केतकी ने सिर टेक दिया और इतने दिनों का जमा आँसुओं का बाँध टूट पड़ा। सबुजनी हौले-हौले पीठ सहलाती जा रही थी– बेटी तो पंछी होती है...

"रो ले बेटी, रो ले, मन में कुछ न रखना, कहा-सुना छिमा करना। बेटी है, गाँव–जवार को असीसती जाना।"

केतकी बड़ी मुश्किल से अलग हुई। खूँट से बँधे चुटकी भर दूब-धान को मुट्ठियों में भींचे पगडंडी पार करने लगी।

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. गाँव आने का कार्यक्रम बनते ही केतकी की नींद क्यों उड़ गई?
2. केतकी को अपने भाई-भाभियों से गाँव के संबंध में पूछे गए प्रश्नों का यथोचित उत्तर क्यों नही मिल पाता था?
3. गॉव तक सड़को के बन जाने की बात सुन केतकी पल भर के लिए उदास क्यों हो गई?
4. केतकी स्टेशन पहुँचते ही गाँव जाने को उतावली क्यों हो उठी थी?
5. बड़े चचेरे भाई द्वारा केतकी को रात्रि विश्राम करने के लिए कहने पर केतकी स्तब्ध क्यों रह गई?
6. कहानी का शीर्षक दूब-धान प्रतीक है:
   - (क) किसानों के परिश्रम का।
   - (ख) सुख सौभाग्य एवं अनश्वरता का।
   - (ग) लहलहाती वनस्पति और फ़सल का।
   - (घ) ग्राम-जीवन के प्रति लगाव का।

लिखित

1. गाँव के लिए यात्रा शुरू करते ही केतकी को गाँव की किन-किन सुखद स्मृतियों ने घेर लिया?
2. 'जैसे निर्मल सौंदर्य की स्वामिनी थी वह, वैसा ही उसका हृदय भी था।' इस पंक्ति के आधार पर सबुजनी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए।
3. गाँव जाते समय केतकी ने सूती साड़ी ही क्यों पहनी और गाँव में उसे सूती साड़ी पहने देख क्या प्रतिक्रिया हुई?
4. केतकी के मन में रची-बसी गाँव की छवि गाँव पहुँचकर धूमिल क्यों हो गई?
5. गाँव से लौटती हुई व्यथित केतकी को यह अनुभव कब हुआ कि गाँव की आत्मीयता आज भी बाकी है?
6. सबुजनी ने ससुराल से आई बेटी केतकी एवं उसके पति की आवभगत में किन-किन प्रथाओं का निर्वाह किया?
7. गाँव पहुँचकर अपनी भाभियों से मिलने का अनुभव सबुजनी से मिलने के अनुभव से किन अर्थों में भिन्न है और इससे दोनों की किस मानसिकता का पता चलता है।
8. 'यह कहानी गाँव से जुडी बालिका (केतकी) के मोहभंग की कहानी है।' पक्ष अथवा विपक्ष में तर्क दीजिए।
9. लेखिका की ग्राम-जीवन से जुड़ी स्मृतियों में गाँव के अनेक रीति-रिवाज, संस्कार रचे-रमे हैं। पाठ में उल्लिखित ऐसे कुछ रीति-रिवाजो, संस्कारों आदि का चयन कीजिए।
10. आशय स्पष्ट कीजिए—
    (क) भाई-भाभी और भतीजे-भतीजियाँ नहीं रहते हैं तो क्या, पूरा-का-पूरा गाँव उसका अपना है।
    (ख) सागर की लहरें जैसे आती हैं, और चली जाती हैं, वैसे ही सारे रस्म-रिवाज, संस्कार।

भाषा-अध्ययन

1. नीचे दिए गए समस्त पदों का विग्रह कीजिए और समास का नाम बताइए—
   फल-फूल, स्वर्गवास, नगराभिमुख, रस्म-रिवाज, शिव-तांडव, बाघंबर।
2. पाठ में प्रयुक्त कुछ विशिष्ट भाषा-प्रयोग दिए गए हैं, उनका वाक्यों में प्रयोग कीजिए।

नींद उड़ जाना, हृदय फटना, जीभ काटना, सपने सहलाना, बेसाख्ता कह उठना, ठगी-सी रह जाना, आँखें चुराना।

3. इस पाठ में अनेक स्थानों पर शुद्ध आँचलिक वाक्य प्रयुक्त हुए हैं यथा—
'केलकी ने सीकी की डलिया में मूढ़ी-लाई नही खाए और ना ही सीकी के बने कंगन, बाजूबंद खेल-खेल में सबुजनी से बनवाकर पहने।' — ऐसे ही कुछ अन्य वाक्य चुनिए।

योग्यता-विस्तार

'गाँव चले शहर की ओर' विषय पर एक निबंध लिखिए।
ग्राम्य अंचल की कुछ अन्य कहानियाँ पढ़िए और उन्हें कक्षा में सुनाइए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

दूब-धान — दूब पवित्रता का प्रतीक है तथा समृद्धि का प्रतीक धान है
नगराभिमुख — नगर की ओर मुख कर लेना, नगरवासी हो जाना
ड्योढ़ी — घर का प्रवेश कक्ष, पौरी
माकूल — उपयुक्त
नवगधुली — पौधा, अंकुर
मालदह — पश्चिमी बंगाल के एक नगर मालदा के प्रसिद्ध आम
सिकता — रेत
बारादरी — डोली
काश — एक प्रकार की झाड़ी जिसमें सफेद फूल खिलते हैं
पटेर — झाड़ीनुमा वृक्ष
पीपें — आम की गुठली को घिसकर बनाई जाने वाली सीटी
मूढ़ी-लाई — मुरमुरे और गुड़ के लड्डू
सीकी — एक प्रकार की मुलायम घास जिससे डलिया और आभूषण बनते हैं
मारकीन — एक मोटा कपड़ा
बाजूबंद — बाँह पर पहनने का गहना
आलता — पैर में लगाने का लाल रंग
बिछुआ — पैर की उंगलियो में पहना जाने वाला आभूषण

अइपन-एपन	–	चावल और हल्दी एक साथ पीस कर बनाया हुआ लेप जो मांगलिक कार्यों, पूजन आदि में काम आता है
पुरइन के थड़	–	कमल का पत्ता और नाल
जीतिया	–	संतान की मंगल कामना के लिए किया जाने वाला व्रत
छठ	–	सूर्य देव के लिए किया जाने वाला व्रत
कंक्रीट (अंग्रेज़ी)	–	कंकड़, सीमेंट, बालू के मिश्रण से बना हुआ भवन-निर्माण के काम आने वाला मसाला
अबरक	–	चमकदार खनिज, अभ्रक धातु
इजोत	–	प्रकाश
तीसी	–	तिलहन
बिलमाए	–	विस्मृत
तलहथी	–	आँख के ऊपर हथेली रखकर देखना
खोइछा	–	नवविवाहिता के आँचल में दूब-धान, हल्दी, सुपारी तथा सिक्के आदि रखकर दिया जाने वाला आशीर्वाद।
पौती	–	छोटी टोकरी
जौसन बाजू तक	–	बॉह गहनों से इस प्रकार लदी है जैसे रुपयों की छड़ी हो, रुपयों का छड़।

जयंत विष्णु नार्लीकर

प्रो. जयंत विष्णु नार्लीकर का जन्म कोल्हापुर, महाराष्ट्र में सन 1938 में हुआ। उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा वाराणसी में प्राप्त की, तत्पश्चात् उच्च शिक्षा के लिए वे कैंब्रिज गए। कैंब्रिज विश्वविद्यालय में वे 1959 में रैंगलर बने तथा 1960 की अंतिम परीक्षाओं में उन्होंने विशेष योग्यता हासिल की। उन्हें खगोल विज्ञान के लिए टाइसन पदक भी मिला। 1960 में ही वे विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो. फ्रेड हॉयल के मार्गदर्शन में अनुसंधान करने लगे।

कैंब्रिज में पंद्रह वर्षों तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद नार्लीकर को 1976 में उनके विशिष्ट अनुसंधान के लिए कैंब्रिज विश्वविद्यालय से डाक्टर ऑफ साइंस की उपाधि प्रदान की गई। 1963 में उनका चयन किंग्स कालेज के फेलो के रूप में हुआ था तथा 1967 में वे कैंब्रिज विश्वविद्यालय के इंस्टीट्यूट ऑफ थिअरेटिकल एस्ट्रोनामी के सदस्य बन गए। कैंब्रिज विश्वविद्यालय में कार्यकाल के दौरान उन्हें स्मिथ पुरस्कार (1962) और एडम पुरस्कार (1967) से सम्मानित किया गया।

प्रो. नार्लीकर 1972 में टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च (टी.आई.एफ.आर.) में प्रोफ़ेसर के रूप में भारत आए, जहाँ वे सैद्धांतिक खगोल विज्ञान ग्रुप की अध्यक्षता करते रहे हैं। 1973- 75 में वे जवाहरलाल नेहरू फेलो थे। 1979-80 में वे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के राष्ट्रीय प्रवक्ता थे।

वे भारतीय भौतिक संगठन और भारतीय खगोलीय सोसायटी के सदस्य हैं। उन्हें विज्ञान संस्थान, मुंबई द्वारा 1973 में गोल्डन-जुबली स्वर्ण पदक तथा 1975 में पद्मभूषण

द्वारा सम्मानित किया गया। 1978 में उन्हें भौतिक विज्ञान के लिए 'शांतिस्वरूप भटनागर' पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। 1983 में इनका चुनाव रॉयल एस्ट्रोनामिकल सोसायटी, लंदन के एसोशिएट के रूप में हुआ।

विज्ञान तथा साहित्य के आप सिद्धहस्त लेखक हैं। आप अपनी मातृभाषा मराठी में लिखते हैं। आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं — ***आगंतुक, वामन नहीं लौटा*** *तथा* ***यक्षोपहार****।*

तारों की दुनिया *में नामक इस लेख में तारों से संबंधित जानकारी को अत्यंत सरल, सुबोध एवं रोचक भाषा में प्रस्तुत किया गया है। इस पाठ में विद्वान लेखक ने एक ओर तो सूर्य से भी अधिक प्रकाशवान होने पर भी दिन में तारों के न दिखने के पीछे वैज्ञानिक कारणों एवं तारों और ग्रहों के अंतर तथा ग्रहों से संबंधित अंधविश्वासों और भ्रामक धारणाओं पर प्रकाश डाला है, तो दूसरी ओर ध्रुवतारे की अटलता के संबंध में पौराणिक कथा का विज्ञान-सम्मत स्पष्टीकरण करने का प्रयास किया है। निश्चय ही प्रस्तुत पाठ खगोल-विज्ञान के संबंध में हमारे ज्ञान को सार्थक दिशा देगा।*

तारों की दुनिया में

खुले आकाश में सूर्यास्त के बाद हमें तारे दिखाई देने लगते हैं। सूर्य के क्षितिज के नीचे जाने पर भी कुछ समय तक आकाश पर हलका सा प्रकाश छाया रहता है। जब वह प्रकाश भी लुप्त होने लगता है तब क्रमशः तारे आकाश के पर्दे पर दिखलाई देने लगते हैं। वे कहाँ से आते हैं? तारे किसी एक जगह से नहीं आते हैं और न ही वे एकाएक आकाश में प्रकट होते हैं। वे अंतरिक्ष में मौजूद रहते हैं पर सूर्य की चमक-दमक के आगे उनका तेज फीका पड़ जाता है और वे दिन में दिखाई नहीं देते। इतना ही नहीं– चंद्रमा के धीमे प्रकाश में भी कई तारे लुप्त हो जाते हैं। एक संस्कृत सुभाषित है :

वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खः शतानपि।
एकः चंद्रस्तमोहंति न तु तारागणः शतम्।।

अर्थ है : सौ मूर्ख पुत्रों से एक गुणवान पुत्र बेहतर है। देखो, एक चंद्रमा अंधकार दूर कर सकता है जिस काम को सैकड़ों तारे नहीं कर पाते।

वास्तव में कवि ने इस श्लोक में तारों के प्रति अन्याय किया है। तारे बहुत प्रकाशवान होते हैं। सूर्य भी एक तारा ही है। केवल निकट होने के कारण वह बहुत तेजस्वी लगता है। जैसे सौ वाट पॉवर के बल्ब को एक फुट की दूरी से देखने का अगर हम दुस्साहस करें तो हमारी आँखें चकाचौंध हो जाएँगी, किन्तु वही बल्ब सौ मीटर की दूरी से देखने पर कितना मंद लगेगा। इसी प्रकार आकाश में दिखाई देने वाले तारों में कई तारे सूर्य से भी कई गुना प्रकाशवान हैं, लेकिन बहुत दूर होने के कारण वे मंद लगते हैं। और चन्द्रमा? उसका प्रकाश तो खुद उसका अपना नहीं है बल्कि सूर्य का बिखराया प्रकाश है।

प्राचीन काल से तारों का अध्ययन करने वालों ने कई महत्त्व की बातें देखीं। उन्होंने देखा कि अधिकांश तारे सूर्य की तरह पूरब से उदय होकर पश्चिम दिशा में अस्त होते हैं। इसलिए यदि तुम कैमरे का शटर रात भर खुला रखकर आकाश का फ़ोटो खींचोगे तो तुम्हारे फ़ोटो में तारे नज़र नहीं आएँगे। वहाँ नज़र आएँगी गोलाकार कक्षाएँ।

यदि फ़ोटो उत्तरी गोलार्ध में खींचा जाए तो तुम देखोगे कि एक तारा ऐसा है जो कक्षा में घूमने के बजाय स्थिर नज़र आएगा। वही है ध्रुव तारा जिसको हमारी पौराणिक कथाओं में महत्त्व का स्थान प्राप्त है। ध्रुव की कहानी संक्षेप में इस प्रकार है:

राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ थीं – सुनीति और सुरुचि, जिनमें सुरुचि उन्हें अधिक प्रिय थी। एक दिन सुरुचि के पुत्र उत्तम को अपने पिता की गोद में बैठे देखकर सुनीति के पुत्र ध्रुव ने भी वहाँ बैठना चाहा, परंतु सुरुचि ने उसे वहाँ से ज़बरदस्ती हटा दिया। इस घटना से क्षुब्ध होकर बालक ध्रुव ने भगवान शंकर की कड़ी तपस्या की। आखिर भगवान प्रसन्न होकर बोले, "बेटा वर माँगो।" तो ध्रुव ने ऐसे स्थान की माँग की जहाँ से उसे हटाया न जा सके। वही ध्रुव आकाश में आज भी अटल मालूम पड़ता है।

किसी खास प्राकृतिक घटना को, जिसका कारण विज्ञान द्वारा नहीं मिलता, ऐसी लोक कथाओं में गढ़ लिया जाता है। लेकिन जैसे-जैसे विज्ञान उन्नति करता जाता है, कारण-मीमांसा भी आगे चलकर हो ही जाती है। और फिर लोक कथा केवल एक मनोरंजक कहानी के रूप में ही रह जाती है।

ध्रुव तारा अटल क्यों प्रतीत होता है? ये सभी कक्षाएँ गोलाकार क्यों हैं? दो हज़ार साल पहले यूनानी निरीक्षकों की यह धारणा थी कि पृथ्वी के चारों ओर ब्रह्मांड एक गेंद के रूप में फैला हुआ है और यह गेंद एक धुरी पर घूमती है। इस धारणा के अनुसार तारे इस गेंद पर चिपके प्रकाश स्रोत हैं जो गेंद के साथ-साथ घूमते हैं। ध्रुव तारा गेंद की धुरी पर होने के कारण नहीं घूमता। (एक गेंद को किसी भी व्यास के चारों ओर घुमाकर देखो। गेंद की सतह पर दो बिंदु ऐसे मिलेंगे जो सदा स्थिर रहते हैं।)

पाँचवी सदी में जन्मे भारतीय ज्योतिर्विद आर्यभट्ट ने इस धारणा का खंडन किया था। अपने ग्रंथ 'आर्यभटीय' में उन्होंने यह दलील दी :

जिस प्रकार नदी के तट पर स्थित स्थिर वस्तुओं (पेड़, मकान, आदि) को नाव में बैठा व्यक्ति उलटी दिशा में जाते देखता है उसी प्रकार स्थिर तारे पृथ्वी से देखने पर पश्चिम दिशा में जाते दिखाई देते हैं। इसलिए आर्यभट्ट का यह दावा सही है कि ब्रह्मांड के तारे स्थिर हैं और हमारी पृथ्वी ही अपनी उत्तर-दक्षिण धुरी पर घूमती है। घूमती पृथ्वी से देखने पर भी तारे घूमते नज़र आते हैं। लेकिन तत्कालीन एवं आर्यभट्ट के बाद के विद्वानों ने सही दलील का समर्थन नही किया और दुर्भाग्य से इस विचार-धारा को दस शताब्दियों तक उपेक्षित रहना पड़ा। सोलहवीं सदी में कोपर्निकस के विचारों का प्रभाव जैसे-जैसे बढ़ने लगा वैसे-वैसे स्थिर पृथ्वी की कल्पना दोलायमान होती गई।

आज हम यह जानते हैं कि पृथ्वी एक लट्टू की तरह अपनी धुरी पर चारों ओर घूमती है और यह धुरी उत्तर दिशा में ध्रुव तारे की ओर है। हॉ, इस लट्टू के उदाहरण में एक और तथ्य भी छिपा है। जब तुम एक लट्टू को घुमाते हो तो क्या उसकी धुरी स्थिर रहती है? नहीं। वह भी धीरे-धीरे शंकु बनाते हुए घूमा करती है। इसी तरह पृथ्वी की धुरी भी अंतरिक्ष में स्थिर नहीं है। वह भी धीरे-धीरे घूमती हुई लगभग 20,000 वर्षों में एक चक्कर पूरा करती है। इसका मतलब यह हुआ कि सर्वदा यह धुरी ध्रुवतारे की ओर नहीं रहेगी। करीब 5,000 वर्ष पहले पृथ्वी वासियों को ध्रुव तारा भी घूमता नज़र आता होगा क्योंकि उस समय अटल स्थान था थुबैन तारे का! इसी प्रकार भविष्य में 11,000 वर्षों के उपरान्त ध्रुव के बजाय वेगा अटल तारा होगा।

यदि हम आकाश के तारों को ध्यान से देखें और कई महीने अपने निरीक्षणों को जारी रखें तो हमें एक और बात दिखाई देगी। वह यह कि सामान्यतः हर तारा अपने पड़ोसी तारों की पृष्ठभूमि में स्थिर दिखाई देगा। यानी तारों के पटल पर कुछ इने-गिने अपवाद छोड़कर सभी तारे स्थिर रहते हैं। केवल पृथ्वी के घूमने के कारण यह तारा-पटल पूर्व से पश्चिम को सरकता नज़र आता है।

जो इने-गिने अपवाद हैं उन्हें ग्रह कहते हैं। यूनानी निरीक्षकों ने ग्रहों को 'प्लेनेट' यानी घुमक्कड़ कहा, क्योंकि उन्हें इनकी गति में अनियमितता दिखाई दी। तारा पटल पर, या सूर्य की दिशा से तुलना करने पर ग्रह कभी आगे कभी पीछे जाते दिखाई देते हैं।

मानव स्वयं को विचारवान जीव समझता है किंतु प्रत्यक्ष आचरण में अपनी विचारशीलता को सर्वदा काम में नहीं लाता। खासकर जब वह सृष्टि की घटनाओं में विचित्रता पाता है तब वह अक्सर अंधविश्वासों का शिकार हो जाता है, जैसे ग्रहों की विचित्र, गति को देखकर सामान्य मानव ने यह धारणा बना ली कि इन ग्रहों में कुछ विशेष शक्ति होती है जिसके बल पर वे इधर-उधर भटकते हैं।

फिर इसी धारणा ने फलित ज्योतिष को प्रोत्साहित किया। "यदि ग्रहों में कोई खास शक्ति है तो हो सकता है उसका प्रभाव मानव जीवन पर भी पड़ता हो"– इस प्रकार की कल्पना से मानव को लगने लगा कि उसके जीवन का नियंत्रण इन ग्रहों के प्रभाव से होता है।

ग्रहों के घूमने की पहेली सुलझी सत्रहवीं सदी में जब योहान केप्लर ने ग्रहों के निरीक्षणों का विश्लेषण करके यह सिद्ध किया कि ग्रह मनमाने नही भटकते बल्कि वे नियमित कक्षाओं में सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। अपने तीन नियमों द्वारा केप्लर ने ग्रहों की गति का पूरा-पूरा विवरण दिया और उसी सदी में आइज़क न्यूटन ने उन तीनों नियमों का संबंध सूर्य के गुरुत्वाकर्षण से जोड़ा। इस प्रकार अब हम जानते हैं कि ग्रह शक्तिवान एवं स्वेच्छाचारी न होकर सूर्य के गुरुत्वाकर्षण द्वारा नियमित कक्षाओं में घूमते हैं। अतः जिस भ्रामक धारणा ने फलित ज्योतिष को प्रोत्साहित किया उसका अब कोई सबूत नहीं रहा।

ग्रह और तारों का फ़र्क अब स्पष्ट हो चुका है। हमारे सूर्य के चारों ओर घूमने वाले ग्रह, तारों की अपेक्षा हमारे काफ़ी निकट हैं परंतु तारों की भाँति स्वयं प्रकाशित न होने के कारण दूसरे तारों के ग्रहों को देखना मुश्किल है। यह संभव है कि अन्य तारों की भी ग्रहमालाएँ हों।

ग्रह पास हैं, तारे दूर हैं, लेकिन ये दूरियाँ हैं कितनी लंबी?

सन 1838 में बेसल नामक एक जर्मन ज्योतिर्विद ने तारों की दूरियाँ नापने के लिए पैरलैक्स विधि को सफलतापूर्वक अपनाया। इस विधि से आसपास के लगभग सात सौ तारों

की दूरियाँ आज हम नाप सकते हैं। किंतु आकाश में हम जिन तारों को अपनी आँखों से देख पाते हैं उनमें से अधिकांश तारों की दूरियाँ इतनी अधिक है कि उन्हें नापने के लिए पैरलैक्स प्रणाली भी कामयाब नहीं होती है। आज ऐसी स्थिति है कि जो तारा हम देख सकते हैं उसकी दूरी पैरलैक्स विधि से नाप नहीं सकते और जिसकी दूरी हम नाप सकते हैं उसे देख नहीं सकते।

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. तारे दिन में क्यों दिखाई नही पड़ते?
2. कैमरे के शटर को रात भर खुला रखकर आकाश का फोटो खींचने पर उसमें तारे नज़र नही आते क्योंकि
   (क) वे एक दिशा से उदय होकर दूसरी दिशा में अस्त होते हैं।
   (ख) वे पृथ्वी से बहुत दूर होते हैं।
   (ग) उनका प्रकाश बहुत मंद होता है।
   (घ) वे चंद्रमा के प्रकाश में लुप्त हो जाते हैं।
3. लेखक के अनुसार संस्कृत श्लोक में तारों के प्रति क्या अन्याय हुआ हे?
4. यूनानी निरीक्षकों ने ग्रहों को प्लेनेट क्यों कहा है?
5. नीचे लिखे शब्दों का उच्चारण कीजिए —
   दुस्साहस, ज्योतिर्विद, दोलायमान, पृष्ठभूमि, गुरुत्वाकर्षण।

लिखित

1. सूर्य स्वयं एक तारा होने पर भी इतना प्रकाशवान क्यों है?
2. ध्रुवतारा आकाश में आज भी अटल है। इसके पीछे कौन सी लोककथा है?
3. आर्यभट्ट ने तारों से संबंधित किस धारणा का खंडन किया और क्यों?
4. फलित ज्योतिष क्या है? इसे किस धारणा ने प्रोत्साहित किया था?
5. ग्रहो और तारों मे अंतर स्पष्ट कीजिए।

भाषा-अध्ययन

1. निम्नलिखित शब्दों में प्रयुक्त प्रत्ययों को लेकर दो-दो शब्द और बनाइए —
   यशस्वी, प्रकाशवान, प्राकृतिक, भारतीय, उपेक्षित, दोलायमान, तत्कालीन।
2. नीचे दिए गए प्रत्येक शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं। ऐसे वाक्य बनाइए जिनसे शब्दों के दोनों अर्थ स्पष्ट हो जाएँ —
   कक्षा, वर, दर्शन।

योग्यता-विस्तार

1. विज्ञान जिस घटना का कोई कारण नहीं दे पाता, वे घटनाएँ लोक कथाएँ बनकर रह जाती हैं। लेखक ने ऐसी एक लोक कथा का उल्लेख किया है। कुछ अन्य ऐसी लोक कथाएँ चुनिए और कक्षा में सुनाइए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

तेजस्वी — चमकीला
कक्षा — घूमने का एक निश्चित पथ
गोलार्ध — घूमने का आधा भाग जो एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक रेखा खींचने से बने
वेधशाला — यंत्रों की सहायता से ग्रहों आदि की गतियों को देखने की जगह
क्षुब्ध — दुखी
मीमांसा — विचार करना
ज्योतिर्विद — ज्योतिषी
दलील — तर्क
निरीक्षण — जाँच
अपवाद — सामान्य नियम के विरुद्ध नियम
गुरुत्वाकर्षण — भार के कारण वस्तु का पृथ्वी के केंद्र की ओर खींचा जाना
फलित ज्योतिष — ग्रह-नक्षत्रों आदि के शुभ-अशुभ फल बताने वाला शास्त्र,
विश्लेषण — तथ्यों आदि को अलग-अलग करके छानबीन करना
योहान केप्लर — एक वैज्ञानिक का नाम
पैरलैक्स — तारों की दूरी नापने की एक विधि।

पद्य खंड

कविता का अध्ययन और अध्यापन

प्रस्तुत संकलन का उद्देश्य केवल कविताओं के अध्ययन तक ही सीमित नहीं है बल्कि उनके माध्यम से हिंदी काव्य-साहित्य की सामान्य जानकारी देना और काव्य के पठन-पाठन के प्रति रुचि उत्पन्न करना भी है । शिक्षण कार्य करते समय इस मूल उद्देश्य को ध्यान में रखना है ।

कविता का अध्ययन मुख्यतः आनंदानुभूति के लिए किया जाता है और कविता का आनंद स्वयं कविता पढ़कर लिया जाता है। कविता-अध्ययन की अपेक्षा रखती है और अध्ययन द्वारा कविता के आनंद के अभिवृद्धि होती है। अपने परिवेश और जीवन को समझने के लिए कविता अंतर्दृष्टि देती है। कविता के अध्ययन का उद्देश्य भाषा-ज्ञान, सूचना-संग्रह या उपदेश न होकर सौंदर्य की अनुभूति द्वारा भावात्मक विकास करना है। कविता सद्वृत्तियों को जगाती है, प्रकृति से तादात्मय स्थापित करने के साथ मानवता का भाव विकसित करती है। मन और हृदय को उदार और संवेदनशील बनाती है। कुछ कविताएँ मनुष्य को तनावहीन करती हैं तो कुछ आंदोलित, उत्तेजित अथवा क्षुब्ध भी करती हैं।

शिक्षण की सुविधा की दृष्टि से काव्य सौंदर्य को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है— अभिव्यक्ति का सौंदर्य, भाव-सौंदर्य और विचार-सौंदर्य ।

अभिव्यक्ति के सौंदर्य का अर्थ है, नाद और चित्रात्मकता का सौंदर्य। चित्रात्मकता भी कविता का एक प्रमुख सौंदर्य विधायक तत्त्व है। कवि भावों तथा विचारों की अभिव्यक्ति के लिए ऐसे शब्दों का चयन करता है कि पाठक को सहज ही उनका मानस-प्रत्यक्ष हो जाता

है। कविता का आनंद स्वयं पाठक की अपनी संवेदनशीलता, संस्कार, सुरुचि और सहज-बुद्धि पर ही निर्भर है किंतु किसी सीमा तक काव्य शिक्षण के द्वारा उसकी सहज बुद्धि को जाग्रत और रुचि को परिष्कृत किया जा सकता है। अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, प्रतीक आदि के सहारे वस्तु-व्यापारों के चित्र प्रस्तुत किए जाते हैं। रसखान का पद 'गोरज बिराजै भाल' पढ़िए। उसमें आपको भाव-सौंदर्य के साथ-साथ नाद सौंदर्य और चित्रात्मकता के यथेष्ठ उदाहरण मिलेंगे ।

भाव-सौंदर्य के अंतर्गत हर्ष, विषाद, उत्साह, प्रेम, भक्ति, वात्सल्य आदि भावों के वर्णन आते हैं । भाव-सौंदर्य को ही काव्य समीक्षकों ने रस की संज्ञा दी है और अधिकांश विद्वानों ने रस को ही काव्य की आत्मा माना है। श्रृंगार, वीर, करुण, शांत, रौद्र, भयानक, अद्भुत, हास्य तथा वीभत्स रस कविता में माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त भक्ति और वात्सल्य को भी कुछ आचार्य रस स्वीकार करते हैं। प्रस्तुत संकलन में सूरदास का पद 'बिनु गोपाल बैरिनि भई कुंजै' तथा रसखान का पद 'सोहत है चँदवा सिर मौर के' प्रेम भाव के उदाहरण हैं।

विषय और विचार की उच्चता से कविता में गरिमा आती है। स्थायी काव्य प्रायः वे ही हैं जिनका विषय महान और श्रेष्ठ है। बहुत-सी ऐसी रचनाएँ हैं जिनमें कवित्व नहीं के बराबर है किंतु व्यक्त विचारों के कारण वे लोकप्रिय और स्थायी बन गई हैं। विचार सौंदर्य के अंतर्गत जीवन दर्शन तथा नीति संबंधी रचनाएँ आती हैं। कबीर और रहीम के नीति के दोहों में विचारों की प्रधानता है। प्रस्तुत संकलन में जीवन-दर्शन की दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त की कविता 'विश्वराज्य', सुमित्रानंदन पंत की कविता 'कातो अंधकार तन मन का', रामकुमार वर्मा की कविता 'ग्राम देवता', अज्ञेय की 'मेरे देश की आँखें' और नागार्जुन की 'उनको प्रणाम' विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

कविता के सामान्य अध्ययन के लिए आवश्यक है कि पढ़ी जाने वाली कविता का एक से अधिक बार सस्वर वाचन किया जाए। कविता के अर्थबोध, रसास्वादन और सौंदर्यानुभूति के लिए लय के साथ भावपूर्ण वाचन आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। कविता की

लय, यति, गति, विराम, बलाघात और मात्रा की व्यवस्था पर निर्भर है। अतएव छंदबद्‌ध और छंदमुक्त सभी रचनाओं में लय-विशेष को ध्यान में रखते हुए कविता पाठ किया जाना चाहिए। शुद्‌ध और स्पष्ट उच्चारण, विषय और भाव के अनुसार वाणी-भंगिमा और आरोह-अवरोह प्रभावपूर्ण कविता पाठ के लिए आवश्यक है। एक बार के वाचन से ही कविता का मर्म और सौंदर्य आत्मसात नहीं किया जा सकता। अतः कविता का एक से अधिक बार वाचन आवश्यक है।

कविता का सौंदर्य उसके अर्थ में निहित रहता है। प्रसंगानुकूल प्रयुक्त शब्द अपेक्षित अर्थ को व्यक्त करता है। कवि का सारा कौशल उपयुक्त अर्थ की व्यंजना करने वाले शब्दों के चयन और व्यवस्था पर रहता है ताकि अल्पतम शब्दों में अधिक से अधिक, गंभीर से गंभीर तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म अर्थ की व्यंजना कर सकें।

अर्थबोध के लिए आवश्यक है कि सबसे पहले कविता का वाच्यार्थ स्पष्ट कर लिया जाए। उसके बाद वाच्यार्थ से भिन्न या संलग्न अन्य लक्षित अथवा व्यंजित अर्थों का यथासंभव स्पष्टीकरण किया जाए। क्योंकि केवल वाच्यार्थ-बोध से कविता के मर्म को आत्मसात नहीं किया जा सकता। वह तो रसानुभूति और सत्य से साक्षात्कार करने का पहला चरण है। उसके लिए कविता में विद्‌यमान लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ का उद्‌घाटन किया जाना चाहिए।

कविता का समग्र प्रभाव कहीं रस के रूप में होता है, कही भाव के रूप में और कहीं विचार के रूप में। जिन कविताओं में रस, भाव और विचार स्पष्ट रूप से कथित या व्यंजित रहते हैं, उनकी स्पष्ट पहचान आवश्यक है किंतु कुछ कविताएँ ऐसी भी होती हैं जिनमें कवि जानबूझकर अपने भाव या विचार को अस्पष्ट छोड़ देता है। ऐसी कविताओं में अनेक अर्थों की संभावनाएँ होती हैं और उन संभावनाओं की दिशा में पाठक के अंतर्मन को दौड़ाना ही कविता का मुख्य प्रयोजन होता है। इसलिए यहाँ कल्पना की पूरी छूट होती है और इसी तरह का प्रयास यहाँ अपेक्षित भी है। ऐसी कविताओं में स्पष्टता के नाम पर किसी एक निश्चित अर्थ को थोप देना उस कविता के साथ अन्याय होगा।

कक्षा-शिक्षण में निम्नांकित क्रम अपनाया जा सकता है:

(क) सुपाठ–शिक्षक द्वारा।

(ख) मुख्य भाव ग्रहण।

(ग) शब्दार्थ तथा सूक्ष्म भाव–विद्यार्थियों की सहभागिता द्वारा।

(घ) व्याख्या एवं सराहना।

(ङ) विद्यार्थियों द्वारा सुपाठ।

(च) मूल्यांकन— कविता कंठस्थ करना, सुवाचन एवं सराहना आदि।

कविता के प्रभावपूर्ण शिक्षण के लिए कवि के सामान्य परिचय के साथ-साथ उसकी भाषा शैली तथा अन्य काव्यगत विशेषताओं की ओर भी विद्यार्थियों का ध्यान आकृष्ट करना चाहिए। विद्यार्थियों को कवि की अन्य रचनाओं को पढ़ने के लिए भी प्रेरित और प्रोत्साहित करना चाहिए।

कबीरदास

कबीरदास का जन्म लगभग सन 1398 में काशी में हुआ। व्यवसाय से वे जुलाहे थे। सुप्रसिद्ध संत स्वामी रामानंद उनके गुरु थे। कबीर पढ़े-लिखे नही थे, किन्तु उन्होंने साधु-संगति और अपने अनुभव से जीवन और जगत का जो ज्ञान तथा मर्म प्राप्त किया वह अद्भुत था।

कबीर का आविर्भाव ऐसे समय में हुआ जब भारतीय समाज बड़े परिवर्तन के दौर से गुज़र रहा था। उन्होंने समाज के संघटन के लिए समस्त बाह्याचारों का अंत करने और प्रेमपूर्वक समान धरातल पर रहने का एक सर्वमान्य सिद्धांत प्रतिपादित किया। वे काशी में रहे, अतः वहाँ पंडितों के आडंबरों को उन्होंने निकट से देखा था। वे मुसलमान परिवार में पले-बढ़े, अतः इस्लाम की कमज़ोरियों से भी वे परिचित थे। उन्होंने इन दोनों धर्मों की संकीर्णता और कट्टरता का खंडन करके मानव-प्रेम की सामान्य भूमि पर दोनों के मेल-मिलाप का पथ प्रशस्त किया। कबीर मूलतः कवि नहीं संत थे। उनकी कविता गहरी सामाजिक चेतना से उद्भूत है। प्रेम के क्षेत्र में राजा-प्रजा, ऊँच-नीच, जाति-पाँति का भेद उन्हें सहन नहीं था। उनका दृढ़ विश्वास था कि 'सहज समाधि' सहज प्रेम से ही सिद्ध होती है। वे 'कागद की लेखी' की बजाय 'आँखिन की देखी' को अधिक प्रामाणिक मानते थे। लगभग सन 1518 में कबीरदास की मृत्यु हुई।

कबीर की रचनाएँ मुख्यतः **कबीर ग्रंथावली** में संग्रहीत हैं, किंतु कबीर पंथ में बीजक ही मान्य है। उनकी कुछ रचनाएँ सिखों के धर्म-ग्रंथ गुरु-ग्रंथ साहब में भी संकलित हैं। कबीर की साखियों की भाषा राजस्थानी-पंजाबी-मिश्रित बोली है, जिसे आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सधुक्कड़ी कहा है। रमैनी और सबद में गेय पद हैं, जिनमें ब्रजभाषा और कहीं-

कहीं पूरबी हिंदी का भी प्रयोग है। उनकी भाषा ऊबड़-खाबड़ अवश्य है, किन्तु सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्त करने की उसमें अद्भुत क्षमता है। उनका प्रमुख उद्देश्य अपने भावों, विचारों और अनुभूतियों को वाणी प्रदान करना था, जिसमें उन्हें पूरी सफलता मिली है।

कबीर के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है:"ऐसे थे कबीर, सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के सामने प्रचंड, दिल के साफ़, दिमाग के दुरुस्त, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वंदनीय। वे जो कुछ कहते थे अनुभव के आधार पर कहते थे, इसीलिए उनकी उक्तियाँ बेधने वाली और व्यंग्य चोट करने वाले होते थे। सच पूछा जाए तो हिंदी में ऐसा जबर्दस्त व्यंग्य लेखक पैदा ही नहीं हुआ।"

यहाँ दिए गए **प्रथम पद** में कबीर ने जाति-धर्म के भेदभाव और बाह्य आडंबरों पर चोट की है। उनका कहना है कि हिंदू-मुसलमान व्यर्थ ही आपस में लड़ रहे हैं। वे जप, माला, तिलक आदि बाह्य आडंबरों में फँसे हैं और माया के अभिमान में स्वयं को छल रहे हैं। अंत में ऐसे लोगों को पछताना पड़ेगा क्योंकि वे प्रपंचों में फँसे हैं और उस परम सत्ता को नही पहचानते।

दूसरे पद में कबीरदास ने कमलिनी और जल के प्रतीकों के माध्यम से जीवात्मा और परमात्मा के संबंधों का उल्लेख किया है और परमात्मा का अंश होने के बावजूद जीवात्मा का अन्यत्र (सांसारिक माया के साथ) हित जुड़ जाने के कारण उसके उदास होने और मुरझाने पर चिंता व्यक्त की है।

(क) सांधो, देखो जग बौराना

साधो, देखो जग बौराना।
साँची कहौ तौ मारन धावै, झूठे जग पतियाना।।
हिंदू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपस मैं दौऊ लड़े मरतु हैं, मरम कोई नहिं जाना।।
बहुत मिले मोहिं नेमी धर्मी प्रात करै असनाना।
आतम-छोड़ि पषानै पूजैं, तिनका थोथा ज्ञाना।।
आसन मारि डिंभ धरि बैठे, मन में बहुत गुमाना।
पीपर -पाथर पूजन लागे, तीरथ -बर्त भुलाना।।
माला पहिरे, टोपी पहिरे, छाप-तिलक अनुमाना।
साखी सब्दै गावत भूले, आतम खबर न जाना।।
घर-घर मंत्र जो देन फिरत हैं, माया के अभिमाना।
गुरुवा सहित सिष्य सब बूड़े, अंतकाल पछिताना।।
बहुतक देखे पीर-औलिया, पढ़ै किताब-कुराना।
करै मुरीद, कबर बतलावैं, उनहूँ खुदा न जाना।।
हिंदू की दया, मेहर तुरकन की, दोनों घर से भागी।
वह करै जिबह, वाँ झटका मारे, आग दोऊ घर लागी।।
या बिधि हँसत चलत है हमको, आप कहावैं स्याना।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, इनमें कौन दिवाना।।

(ख) काहे री नलनी तूँ कुम्हलाँनी

काहे री नलनी तूँ कुम्हलाँनीं।
तेरे ही नालि सरोवर पानी।।

जल मैं उतपति, जल में बास।
जल में नलनी तोर निवास।।
ना तलि तपति न ऊपरि आगि।
तोर हेतु कहु कासनि लागि।।
कहै कबीर जे उदिक समान।
ते नहिं मुए हँमरें जान।।

प्रश्न-अभ्यास

(क) साधो, देखो जग बौराना

मौखिक

1. कबीर ने जग को पागल क्यों कहा है?
2. 'साँची कहौ तौ मारन धावै, झूठे जग पतियाना' से लोगों की किस प्रवृत्ति का पता चलता है?
3. कबीर ने इस पद में किन-किन पाखंडों का उल्लेख किया है?
4. कबीर के विचार में पीर-औलिया भी खुदा को क्यों नही जान पाते?
5. 'इनमें कौन दिवाना' में 'इनमें' शब्द का प्रयोग किनके लिए हुआ है?

लिखित

1. कबीर की दृष्टि में किन लोगों को आत्मबोध नहीं हो पाता?
2. कबीर को क्यों कहना पड़ा– 'आग दोऊ घर लागी'?
3. 'आप कहावै स्याना' कहकर कबीर ने किन लोगों पर व्यंग्य किया है?
4. भाव स्पष्ट कीजिए–
   (क) मरम कोई नहिं जाना
   (ख) साखी सब्दै गावत भूले, आतम खबर न जाना
   (ग) गुरुवा सहित सिष्य सब बूड़े

योग्यता-विस्तार

1. कबीर की कुछ ऐसी साखियाँ याद कीजिए जिनमें उन्होंने सामाजिक कुरीतियों और बाह्य आडंबरों का विरोध किया है।
2. आडंबरो का विरोध करने वाले कुछ अन्य कवियों की कविताओं को खोजकर पढ़िए।
3. 'कबीर आज भी प्रासंगिक हैं' इस विषय पर एक परिचर्चा आयोजित कीजिए।

(ख) काहे री नलनी तूँ कुम्हलाँनीं

मौखिक

1. नलनी और जल के प्रतीकों को स्पष्ट कीजिए।
2. कवि की दृष्टि से कमलिनी को क्यों नहीं कुम्हलाना चाहिए?

लिखित

1. 'तोर हेतु कहु कासनि लागि' कथन में कासनि (किससे) के द्वारा कवि ने किस ओर संकेत किया है —
   (क) जीव की ओर
   (ख) ब्रह्म की ओर
   (ग) सांसारिक माया की ओर
   (घ) ज्ञान की ओर

2. 'मै उदिक समान' के अर्थ को स्पष्ट कीजिए।
3. कबीर की दृष्टि मे मृत्यु को कौन नहीं प्राप्त होते और क्यों?
4. भाव स्पष्ट कीजिए

   जल में उतपति, जल म वास,

   जल में नलनी तोर निवास।

योग्यता-विस्तार

1. कबीर के कुछ अन्य पद अथवा साखियों को खोजकर पढ़िए, जिनमें आत्मा-परमात्मा के संबंधों का चित्रण हुआ है।

शब्दार्थ और टिप्पणी

(क) साधो, देखो जग बौराना

पखान — पाषाण, पत्थर

पतियाना — विश्वास करना

मरम — मर्म, भेद, रहस्य

डिंभ — दंभ, आडंबर

बूड़े — डूब गए

मेहर — दया, कृपा

जिबह — हत्या करना, कलमा पढ़ते हुए पशु का धीरे-धीरे वध करना

झटका — एक ही वार में (झटके में) पशु का वध करना

स्याना — चतुर

पीर-औलिया — सिद्ध पुरुष और फ़कीर

करै मुरीद — भक्त बनाना, अनुयायी बनाना

कबर बतलावै — कब्र की पूजा करने को कहते हे

दिवाना — दीवाना, सनकी, विक्षिप्त

छाप -तिलक	—	धर्माचरण के बाहरी लक्षण, जैसे : राम-नामी, दुपट्टा पहनना, माथे पर भिन्न-भिन्न प्रकार के तिलक लगाना आदि

(ख) काहे री नलनी तूँ कुम्हलौनीं

नलनी	—	कमलिनी
नालि	—	निकट, पास, कमल को डंडो
तलि	—	नीचे
तपति	—	ताप, गरमी
कासनि	—	किससे
हेतु	—	लगन, प्रेम
उदिक	—	जल
मुए	—	मरे
हँमरें जान	—	हमारे विचार से।

सूरदास

विद्वानों का मत है कि सूरदास का जन्म दिल्ली के निकट, वल्लभगढ़ से लगभग तीन किलोमीटर दूर 'सीही' नामक गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में सन 1478 के आसपास हुआ था। तथा सन 1583 के लगभग इनका स्वर्गवास हुआ। किशोरावस्था में ही ये संसार से विरक्त होकर मथुरा चले गए और बाद में आगरा-मथुरा के बीच गऊघाट पर साधु के रूप में रहने लगे। यहीं महाप्रभु वल्लभाचार्य से इनकी भेंट हुई। इन्होंने अपना एक पद गाकर महाप्रभु को सुनाया, जिससे वे बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने सूरदास को अपना शिष्य बना लिया। उन्ही की आज्ञा से सूरदास ने 'श्रीमद्भागवत' के आधार पर कृष्ण-लीला का विस्तारपूर्वक पद-शैली में गान किया।

सूरदास के विषय में प्रसिद्ध है कि ये जन्मांध थे, परंतु इनके काव्य के वर्ण्य-विषयों को देखते हुए इस बात पर विश्वास नहीं होता। इन्होंने अपनी कविता में विविध रंगों, बालकों की स्वाभाविक चेष्टाओं तथा प्राकृतिक दृश्यों का जैसा सजीव और यथार्थ चित्रण किया है, वह वस्तुओं को देखे बिना संभव नहीं।

महाकवि सूरदास श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। कृष्ण के मनोहारी रूपों का वर्णन करने में सूर की कला निखर उठी है। बाल-लीला-वर्णन में जैसी तन्मयता इनकी वाणी में मिलती है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। इनके काव्य में यद्यपि सभी रसों का समावेश हुआ है, फिर भी वात्सल्य और श्रृंगार की प्रधानता है। इन दो रसों के चित्रण में तो सूरदास अद्वितीय हैं। इनकी कविता ब्रजभाषा में है जो साहित्यिक होते हुए भी बोलचाल की भाषा के बहुत निकट है।

सूरदास के रचे पाँच ग्रंथ कहे जाते हैं – **सूरसागर, सूर सारावली, साहित्य लहरी, नल-दमयंती, ब्याहली**। इनमें से अंतिम दो पुस्तकें अप्राप्य हैं और उनका सूर-कृत होना भी अधिकांश विद्वानों को मान्य नहीं है। **सूरसागर** इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है और यही सूर की अमर कीर्ति का आधार है। इसके विषय में प्रसिद्ध है कि इसमें सवा लाख पद थे, किंतु अभी तक उसके लगभग पाँच हज़ार पद ही प्राप्त हो सके हैं।

'सूरसागर' के **भ्रमरगीत** प्रसंग से दो पद दिए गए हैं। पहले पद में कृष्ण के वियोग में वे सभी वस्तुएँ गोपियों को पीड़ा दे रही हैं जो कृष्ण के साथ होने पर आनंददायक थीं। दूसरे पद में गोपियाँ उद्धव को अपनी विवशता के बारे में बता रही हैं कि वे अपने एकमात्र मन को श्रीकृष्ण को सौंप चुकी हैं, उनसे मिलने की आशा से ही जीवित हैं। श्रीकृष्ण के अतिरिक्त उनका अन्य कोई नहीं है। इसीलिए वे निर्गुण ईश्वर को मन में बसा नहीं सकतीं।

भ्रमरगीत

बिनु गोपाल बैरिनि भई कुँजैं।
तब वै लता लगति तन सीतल, अब भईं विषम ज्वाल की पुंजैं।।
बृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल-फूलनि अलि गुंजैं।
पवन, पान, घनसार, सजीवन, दधि-सुत किरनि भानु भईं भुंजैं।।
यह ऊधौ कहियौ माधौ सौं, मदन मारि कीन्हीं हम लुंजैं।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे दरस कौं, मग-जोवत, अँखियाँ भईं छुजैं।।1।।

उधौ मन न भए दस बीस।
एक हुतौ सो गयौ स्याम संग, को अवराधै ईस।।
इंद्री सिथिल भई केसव बिनु, ज्यौं देही बिनु सीस।
आसा लागि रहति तन स्वासा, जीवहिं कोटि बरीस।।
तुम तो सखा स्याम सुंदर के, सकल जोग के ईस।
सूर हमारे नंद-नंदन बिनु, और नहीं जगदीस।।2।।

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. यमुना तट के जो कुंज गोपियों के लिए आनंददायक थे, वे अब बैरी-से क्यों लगते हैं?

2. निर्गुण ईश्वर की उपासना करने में गोपियाँ अपने को असमर्थ क्यों पा रही हैं?
3. श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा करती गोपियों की दशा कैसी हो गई है?

लिखित

1. 'बिनु गोपाल बैरिनि भई कुँजें' पद के अनुसार उन वस्तुओं/स्थितियो को बताइए जो संयोग में आनंददायक थी और वियोग में कष्टदायक हो गई।
2. 'मन न भए दस बीस' कहकर गोपियाँ क्या समझाना चाहती है?
3. भाव सौंदर्य स्पष्ट कीजिए :
   (क) दधि-सुत किरनि भानु भई भुंजे।
   (ख) एक हुतौ सो गयौ स्याम संग, को अवराधै ईस।

योग्यता-विस्तार

जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' के भ्रमरगीत संबंधी कवित्त को पढ़िए और सूरदास से उनकी तुलना कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

ज्वाल की पुंजैं – आग की लपटें
अलि गुंजैं – भौरे गुंजार करते है
घनसार – कपूर
दधि-सुत – चंद्रमा
सजीवन – संजीवनी बूटी, जीवनदायिनी वनस्पति
हुतौ – था
मदन – कामदेव
लुंजे – लुंज-पुंज, लूला-लँगड़ा
गुंजें – घुँघची, (आँखें गुंजा-सी लाल हो गई)
पुरवौ – पूरा करें।

रसखान

हिंदी की सेवा करने वाले मुसलमान कवियों में रसखान अन्यतम हैं। उनका जन्म दिल्ली के एक संपन्न पठान परिवार में सन 1533 के लगभग हुआ। कृष्ण-भक्ति ने रसखान को ऐसा मुग्ध कर लिया था कि वे गोकुल जा बसे। वहाँ उन्होंने गोस्वामी बिट्ठलनाथ से दीक्षा ग्रहण की और जीवन भर वे वृंदावन में ही रह गए।

रसखान का वास्तविक नाम सैयद इब्राहीम था। वे बड़े प्रेमी स्वभाव के थे। वैष्णवों के उपदेश और साधुओं की संगति से उनका लौकिक प्रेम भगवान कृष्ण के प्रति अलौकिक प्रेम में बदल गया। श्रीकृष्ण की भक्ति के रस में डूबा हुआ देखकर लोग उन्हें रसखान कहने लगे और वे स्वयं भी भक्ति-भावना वाले पदों में अपने को 'रसखान' नाम से ही व्यक्त करने लगे।

कृष्ण-प्रेम की गहराई और निष्ठा के कारण गोस्वामी बिट्ठलनाथ के 252 प्रधान शिष्यों में रसखान की भी गणना होती है। सन 1614 के लगभग रसखान की मृत्यु हुई।

रसखान की केवल दो पुस्तकें उपलब्ध हैं ***सुजान रसखान*** *और* ***प्रेमवाटिका****।* ***सुजान रसखान*** *में कवित्त-सवैये हैं।* ***प्रेमवाटिका*** *में उनके दोहे हैं। रसखान-साहित्य का मुख्य विषय कृष्ण-प्रेम और भक्ति है। उनकी कविता कृष्ण-प्रेम एवं ब्रज-प्रेम से ओत-प्रोत है।*

रसखान की भाषा सरस और सरल ब्रजभाषा है। ऐसी मधुर आडंबर से मुक्त ब्रजभाषा के दर्शन बहुत कम कवियों में होते हैं। मुहावरों ने उनकी भाषा को बड़ा जीवंत बना दिया है। अनुप्रास की अनोखी छटा भी बड़ी मनोहारिणी है।

रसखान ने दोहा, कवित्त और सवैया छंदों में ही काव्य-रचना की है।

यहाँ रसखान के दो पद दिए जा रहे हैं। ***प्रथम पद*** *में श्रीकृष्ण के रूप-सौंदर्य का मनोरम चित्रण है।* ***दूसरे पद*** *में मुरलीवादन का गोपियों पर ऐसा अद्‌भुत प्रभाव दर्शाया गया है कि वे अपनी सुध-बुध खो बैठती हैं।*

कृष्णभक्ति

सोहत है चँदवा सिर मोर के, जैसिये सुंदर पाग कसी है।

तैसिये गोरज भाल विराजति, जैसी हिय बनमाल लसी है।

रसखानि बिलोकत बौरी भई, दृग मूँदि कै ग्वालि पुकारि हँसी है।

खोलि री घूँघट, खोलौं कहा, वह मूरति नैनन माँझ बसी है।।1।।

गोरज बिराजै भाल लहलही बनमाल

आगे गैया पाछे ग्वाल गावैं मृदु तान री।

तैसी धुनि बाँसुरी मधुर-मधुर जैसी ,

बंक चितवनि मंद-मंद मुसकानि री।।

कदम बिटप के निकट तटनी के आय

अटा चढ़ि चाहि पीतपट फहरानि री।

रस वरसावै तन तपन बुझावे नैन

प्रानन रिझावै वह आवै रसखानि री।।2।।

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. गोपी के बावरी हो जाने का क्या कारण है?
2. गोपी अपने नेत्र क्यों नहीं खोलना चाहती?
3. गोपी अपनी सखी से अटारी पर चढ़कर क्या देखने को कह रही है?
4. गोपी के विचार में कृष्ण का रूप-माधुर्य उस पर क्या प्रभाव उत्पन्न करता है?

लिखित

1. गोपियों के नेत्रों में बसी कृष्ण की मूर्ति का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
2. 'गोरज बिराजै भाल' पद के आधार पर गाय चराकर लौटते हुए कृष्ण की छवि का शब्द-चित्र प्रस्तुत कीजिए।
3. कृष्ण के रूप सौंदर्य के प्रस्तुत दो चित्रों में से आपको कौन-सा चित्र अधिक अच्छा लगा और क्यों?

योग्यता-विस्तार

रसखान के कुछ अन्य सवैये याद कीजिए और कक्षा में उनका सस्वर वाचन कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

मोर - मौर, एक प्रकार का मुकुट
गोरज - गायों के खुरों से उड़ी धूल
बंक चितवनि - तिरछी नज़र
कदम बिटप - कदंब का पेड़
तटनी - नदी (यमुना)
अटा - अटारी, छत।

मैथिलीशरण गुप्त

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म सन 1886 में चिरगाँव, ज़िला झाँसी (उत्तर प्रदेश) में हुआ और निधन सन 1964 में हुआ। इनके पिता सेठ रामचरण गुप्त अच्छे कवि थे। अतः इनको भी यह कला पिता से विरासत के रूप में मिली थी। इनकी प्रारंभिक शिक्षा स्थानीय विद्यालय में हुई। तत्पश्चात् ये झाँसी के मेकडॉनल हाई स्कूल में प्रविष्ट हुए। इसी बीच इनका संपर्क मुंशी अजमेरी जी से हो गया। उनसे काव्य-रचना संबंधी आवश्यक बातों का ज्ञान हुआ और ये काव्य-रचना के क्षेत्र में उतर आए।

मैथिलीशरण गुप्त की प्रारंभिक रचनाएँ कोलकाता से प्रकाशित हुआ करती थीं। बाद में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपर्क में आने पर 'सरस्वती' पत्रिका में भी प्रकाशित होने लगी। द्विवेदी जी के प्रोत्साहन से इनकी काव्यकला में पर्याप्त निखार आया।

हिंदी कविता के क्षेत्र में इनके काव्य को बहुत लोकप्रियता मिली है। इनकी रचनाओं में स्वदेश प्रेम का स्वर अनेक रूपों में मुखरित और गुंजरित हुआ है। इसीलिए इन्हें 'राष्ट्रकवि' कहकर सम्मानित किया गया। सन 1957 में इनको साकेत महाकाव्य पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक पुरस्कार दिया गया। सन 1946 में हिंदी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद ने इन्हें साहित्य वाचस्पति की उपाधि प्रदान की। अनेक वर्षों तक ये राज्यसभा के मनोनीत सदस्य भी रहे।

गुप्त जी ने हिंदी साहित्य को दो महाकाव्य और उन्नीस खंडकाव्य प्रदान किए। ***भारत-भारती,*** *गुप्त जी की अमर कृति है। राष्ट्रीयता के प्रचार एवं प्रसार का श्रेय इसी*

कृति को जाता है। तुलसीदास के रामचरितमानस के बाद हिंदी में राम काव्य की दूसरी महत्त्वपूर्ण कृति ***साकेत*** *है। इस महाकाव्य में इन्होंने कवियों द्वारा उपेक्षित उर्मिला को नायिका बनाया है।* ***जयद्रथ वध, यशोधरा, पंचवटी*** *आदि इनकी अन्य प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।*

पंचवटी में प्रकृति प्रेम का चित्रण बहुत ही सुंदर ढंग से किया गया है। गुप्त जी ने अन्य धर्मों के उदात्त तत्त्वों का भी वर्णन किया है। जैसे 'अर्जन और विसर्जन' में ईसाई संस्कृति, 'काबा और कर्बला' में इस्लाम, 'कुणाल' में बौद्ध संस्कृति तथा 'अनघ' में जैन संस्कृति की छाप है।

विश्वराज्य *कविता हमें प्रांत, देश आदि की सीमाओं से परे एक संपूर्ण विश्व के संदर्भ में सोचने की प्रेरणा देती है। गुप्त जी का विश्वास है कि प्रकृति के सभी उपादानों पर मानवमात्र का अधिकार है। सभी लोग एक ही मानव-परिवार के अंग हैं, परस्पर पूरक हैं। इसलिए हमें जन्मभूमि की मान्यता की व्यापकता विश्वराज्य के रूप में करनी होगी।*

विश्वराज्य

कहो, तुम्हारी जन्मभूमि का है कितना विस्तार?
भिन्न -भिन्न यदि देश हमारे तो किसका संसार?
धरती को हम काटें छाँटें,
तो उस अंबर को भी बाँटें,
एक अनल है, एक सलिल है, एक अनिल-संचार।
कहो, तुम्हारी जन्मभूमि का है कितना विस्तार?
एक भूमि है, एक व्योम है,
एक सूर्य है, एक सोम है,
एक प्रकृति है, एक पुरुष है, अगणित रूपाकार।
कहो, तुम्हारी जन्मभूमि का है कितना विस्तार?
ठौर-ठौर का गुण अपना है,
ऋतुओं का कंपना - तपना है,
समशीतोष्ण एकरस हमको, होना है अविकार।
कहो, तुम्हारी जन्मभूमि का है कितना विस्तार?
अलग-अलग हैं सभी अधूर,
सब मिलकर ही तो हम पूरे,
एक दूसरे का पूरक है, एक मनुज परिवार।
कहो, तुम्हारी जन्मभूमि का है कितना विस्तार?

स्वर्ण-भूमि यदि अलग तुम्हारी,

तो हम भी लोहायुधधारी,

कैसे हो सकता है फिर इस विग्रह का परिहार।

कहो, तुम्हारी जन्मभूमि का है कितना विस्तार?

परित्राण का एक मंत्र है,

विश्वराज्य, जो लोकतंत्र है,

सब वर्णों का, सब धर्मों का, जहाँ एक अधिकार।

कहो, तुम्हारी जन्मभूमि का है कितना विस्तार?

एक देह के विविध अंग हम,

दुख-सुख में सब एक संग हम,

लगे एक के क्षत पर सबका स्नेह लेप सौ बार।

कहो, तुम्हारी जन्मभूमि का है कितना विस्तार?

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. कविता में उल्लिखित पाँच तत्त्वों के नाम बताइए।
2. कवि के अनुसार हम अधूरे कब लगते हैं?
3. भिन्न- भिन्न ऋतुओं में हमें कैसा बने रहने का अधिकार है?
4. कवि के अनुसार रक्षा का एकमात्र मंत्र क्या है?

लिखित

1. 'कहो, तुम्हारी जन्मभूमि का है कितना विस्तार ?'
   इस प्रश्न को बार-बार पूछकर कवि क्या संदेश देना चाहता है?

2. किन पंक्तियों में कवि पाँच तत्त्वों का उल्लेख करते हुए केवल एक तत्त्व के आधार पर ही देशों मे विभाजन संभव मानता है?
3. आपके विचार मे मानव समाज किस प्रकार एक-दूसरे का पूरक है?
4. दो राष्ट्रों में फूट पडने का कारण कवि ने क्या माना है?
5. कवि ने किस रूप में विश्वराज्य की कल्पना की है?
6. भाव सौंदर्य स्पष्ट कीजिए:
   (क) एक प्रकृति है, एक पुरुष है, अगणित रूपाकार।
   (ख) लगे एक के क्षत पर सबका स्नेह लेप सौ बार।

योग्यता-विस्तार

1. 'अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना' विषय पर एक निबंध लिखिए।
2. मैथिलीशरण गुप्त और माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा लिखित 'स्वदेश प्रेम' की कुछ कविताएँ याद कीजिए और सुनाइए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

स्वर्णभूमि	–	संपन्न देश
लौहायुधधारी	–	लोहे को धारण करने वाला, शक्तिशाली
विग्रह	–	फूट, झगड़ा
परिहार	–	समाधान, हल
परित्राण	–	रक्षा
क्षत	–	घाव, चोट

एक प्रकृति है, एक पुरुष है, अगणित रूपाकार– भारतीय दर्शन के अनुसार प्रकृति और पुरुष से ही अनेक रूपों में सृष्टि का अस्तित्व हुआ है। वेद, उपनिषद, गीता आदि में यही उल्लेख मिलता है–

– एकोहं बहुस्याम (अनेक रूपों में एक मैं ही हूँ)
– पुरुष एवेदं सर्वम् (यह सब पुरुष ही है)
– अहं सर्वस्य प्रभवो, मत्तः सर्वं प्रवर्तते-
  (मुझसे ही सबका जन्म और विकास होता है)।

सुमित्रानंदन पंत

सुमित्रानंदन पंत का जन्म सन 1900 में अल्मोड़ा ज़िले के कौसानी गाँव में एक संपन्न परिवार में हुआ। जन्म के छह घंटे बाद ही उनकी माता का देहावसान हो गया। उनका बचपन का नाम गुसाई दत्त था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा अल्मोड़ा में हुई। सन 1919 में पंतजी इलाहाबाद आए और म्योर सेंट्रल कालेज में भरती हुए। असहयोग आंदोलन से प्रभावित होकर बिना परीक्षा दिए ही उन्होंने पढ़ना छोड़ दिया और स्वाध्याय में लग गए।

पंतजी ने छंद रचना चौथी कक्षा में ही आरंभ कर दी थी, पर उनका वास्तविक कवि-कर्म कालेज में प्रारंभ हुआ। उन्होंने सन 1938 में 'रूपाभ' पत्रिका निकाली, जिसकी प्रगतिशील साहित्य के विकास और प्रचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। सन 1950 से 1957 तक वे आकाशवाणी के हिन्दी परामर्शदाता रहे। पंतजी को सोवियत भूमि का नेहरू पुरस्कार, साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। पंत जी का निधन सन 1977 में हुआ।

पंतजी छायावाद के कवियों में सबसे अधिक रोमांटिक तथा व्यक्तिवादी माने जाते हैं। एक तरह सेउनका सारा व्यक्तित्व ही गीतिमय है। उनकी साहित्यिक यात्रा के तीन सोपान हैं— प्रथम में वे छायावादी, दूसरे में समाजवादी आदर्शों से प्रेरित प्रगतिवादी तथा तीसरे में अरविंद दर्शन से प्रभावित अध्यात्मवादी हैं। उनकी काव्य यात्रा के सन 1921-28 के कालखंड को ***वीणा-पल्लव काल*** *कहा जाता है।* ***गुंजन*** *छायावाद की प्रौढ़ कृति है, जिसमें प्रकृति और मानव-सौंदर्य के प्रति नवीन उन्मेष है। गांधी-मार्क्स के प्रभाव से उन्हें नवीन जीवन-दृष्टि मिली जो* ***युगांत*** *से* ***ग्राम्या*** *तक व्याप्त है। सन 1945-59 तक के*

काल को कवि ने नवमानवतावाद का स्वप्नकाल कहा है। **स्वर्ण धूलि** से लेकर **उत्तरा** तक की कविताओं में अरविंद की चेतनावादी काव्य-धारा के दर्शन होते हैं।

पंत छायावाद के सबसे सुकुमार कवि माने जाते हैं। उनका संपूर्ण साहित्य हिंदी साहित्य की आधुनिक चेतना का प्रतीक है। उन्होंने आधुनिक हिन्दी काव्य को श्रेष्ठ अभिव्यंजना, व्यक्तिमत्ता, भाषा-सामर्थ्य तथा नई छंद दृष्टि देकर नई शक्ति और स्फूर्ति से अनुप्राणित किया।

उनकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं– **वीणा, ग्रंथि, पल्लव, गुंजन, युगांत, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्ण किरण, उत्तरा, कला और बूढ़ा चाँद, चिदंबरा तथा लोकायतन**। काव्य के अतिरिक्त उन्होंने आलोचना, कहानी, आत्मकथा आदि गद्य विधाओं में भी रचनाएँ कीं।

गाता खग कविता में बताया गया है कि प्रकृति के विविध स्वरूप मनुष्य के कल्याण और उत्थान के लिए कुछ-न-कुछ संदेश देते हैं।

कातो अंधकार तन-मन का में कवि समाज में व्याप्त बुराइयों को नष्ट करने के लिए नए सद्‌गुणों को स्थापित करने का आग्रह करता है। धुनने-कातने और बुनने से संबंधित शब्दावली का प्रयोग कर कवि शील, स्नेह और सुरुचि का नवीन वस्त्र तैयार करने को कहता है, जिससे कि विश्वभर में मानवता की स्थापना हो सके।

(क) गाता खग

गाता खग प्रातः उठकर —
सुंदर, सुखमय जग-जीवन !
गाता खग संध्या -तट पर —
मंगल, मधुमय जग-जीवन !

कहती अपलक तारावलि
अपनी आँखों का अनुभव,
अवलोक आँख आँसू की
भर आतीं आँखें नीरव !

हँसमुख प्रसून सिखलाते
पल भर है, जो हँस पाओ,
अपने उर की सौरभ से
जग का आँगन भर जाओ !

उठ-उठ लहरें कहतीं यह —
हम कूल विलोक न पाएँ,
पर इस उमंग में बह-बह
नित आगे बढ़ती जाएँ !

कँप-कँप हिलोर रह जाती–
रे मिलता नहीं किनारा !
बुद्बुद् विलीन हो चुपके
पा जाता आशय सारा !

(ख) कातो अंधकार तन-मन का

कातो अंधकार तन-मन का !
नव प्रकाश के रजत -स्वर्ण से
बुनो तरुण पट नव जीवन का !

युग -युग के बहु भेदों को धुन
बर्बरता, पाशवता को चुन,
नव मानवता से ढँक दो हे,
कुत्सित नग्न रूप जन-जन का !

दिशिपल के ताने-बाने भर
धूपछाँह रच संस्कृति सुंदर,
बीनो स्नेह सुरुचि संयम से
शील वसन नव भव यौवन का !

सजा पुरातन को, कर नूतन,
देश-देश का रंग अपनापन,
निखिल विश्व की हाट-बाट में
लेन-देन हो मानवपन का !

प्रश्न-अभ्यास

(क) गाता खग

मौखिक

1. पक्षी प्रातः उठकर क्या गाता है?
2. 'तारावलि की ऑखों का अनुभव' क्या है?
3. फूल हमें क्या संदेश देते हैं?
4. लहरें किस उमंग में आगे बढती जाती हैं?
5. हिलोरें कॉँप-कॉप कर क्यों रह जाती हैं?

लिखित

1. प्रकृति से मानव जीवन को क्या-क्या अनुभव प्राप्त होते हैं? किन्हीं तीन का उल्लेख कीजिए।
2. बुद्‌बुद्‌ शांत क्यों हो जाता है?
3. भाव स्पष्ट कीजिए :

   (क) अवलोक ऑख ऑसू की
भर आतीं आँखें नीरव !

   (ख) बुद्‌बुद्‌ विलीन हो चुपके
पा जाता आशय सारा !

योग्यता-विस्तार

सुमित्रानंदन पंत द्‌वारा लिखित प्रकृति सौंदर्य की कुछ कविताएँ याद कीजिए और सुनाइए।

(ख) कातो अंधकार तन-मन का

मौखिक

1. नई मानवता के वस्त्र से किन-किनको ढॉपने की आवश्यकता है?

2. नवयौवन को सजाने के लिए कैसे वस्त्र की कल्पना की गई है?
3. कवि किस प्रकार के ताने-बानों से 'सुंदर संस्कृति' की रचना करना चाहता है?

लिखित

1. कवि नए जीवन का नया वस्त्र कैसे निर्मित करने को कहता है?
2. 'सजा पुरातन को, कर नूतन' कथन का आशय स्पष्ट कीजिए।
3. संसार भर में मानवता का ही आदान-प्रदान हो— इसके लिए क्या-क्या होना आवश्यक है।
4. भाव स्पष्ट कीजिए :
   (क) नव प्रकाश के रजत-स्वर्ण से
   बुनो तरुण पट नवजीवन का !
   (ख) बीनो स्नेह सुरुचि संयम से
   शील वसन नव भव यौवन का !

योग्यता -विस्तार

नई मानवता के निर्माण के लिए क्या-क्या होना आवश्यक है? इस पर चर्चा कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

(क) गाता खग

मधुमय – आनंदपूर्ण
अवलोक – देखकर
नीरव – शांत
प्रसून – फूल
सौरभ – सुगंध
कूल – तट
बुद्बुद् – बुलबुला

(ख) कातो अंधकार तन-मन का

रजत-स्वर्ण	–	चाँदी और सोना
तरुण पट	–	नया वस्त्र
पाशवता	–	पशुता
शील वसन	–	सदाचार रूपी वस्त्र
निखिल	–	पूर्ण ।

रामकुमार वर्मा

रामकुमार वर्मा का जन्म सन 1905 में मध्य प्रदेश के सागर ज़िले में हुआ। इनके पिता का नाम लक्ष्मी प्रसाद वर्मा और माता का नाम राजरानी देवी था। इनके पिता डिप्टी कलक्टर थे और माता कवयित्री थीं। रामकुमार वर्मा को बचपन में 'कुमार' नाम से पुकारा जाता था। बचपन से ही ये प्रतिभाशाली थे, अपनी कक्षा में सदैव प्रथम आते थे। पढ़ने-लिखने के अतिरिक्त ये विद्‌यालय के अन्य क्रिया-कलापों में भी सक्रिय रहते थे। इन्होंने अपने विद्‌यार्थी जीवन में अनेक नाटकों में अभिनय किया था। जब ये दसवीं कक्षा के विद्‌यार्थी थे तो इन्होंने असहयोग आंदोलन में भी भाग लिया था। धीरे-धीरे इन्होंने पुनः अपना अध्ययन आरंभ किया और सफलता की सीढ़ियाँ पार करते हुए इलाहाबाद विश्वविद्‌यालय से हिंदी में एम.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। तदुपरांत नागपुर विश्वविद्‌यालय से हिंदी साहित्य के इतिहास पर पीएच. डी. की डिग्री प्राप्त की। अनेक वर्षों तक रामकुमार वर्मा इलाहाबाद विश्वविद्‌यालय के हिंदी विभाग में प्राध्यापक और विभागाध्यक्ष रहे। सोवियत सरकार के विशेष आमंत्रण पर मास्को विश्वविद्‌यालय में भी इन्होंने एक वर्ष तक अध्यापन कार्य किया।

डॉ. रामकुमार वर्मा बहुमुखी प्रतिभासंपन्न साहित्यकार थे। ये सुप्रसिद्‌ध एकांकीकार, लोकप्रिय कवि और सशक्त आलोचक थे। **चित्ररेखा** काव्य कृति पर इन्हें देव पुरस्कार मिला था। एकांकी संकलन **सप्त किरण** पर 'अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन पुरस्कार' तथा **विजय पर्व** नाटक पर इन्हें मध्य प्रदेश सरकार द्‌वारा सम्मानित किया गया था। रामकुमार वर्मा का निधन सन 1990 में हुआ।

अंजलि, अभिशाप, रूपराशि, चित्ररेखा, चंद्रकिरण, संकेत, जौहर *आदि उनकी प्रसिद्‌ध काव्य रचनाएँ हैं।*

रामकुमार वर्मा की काव्य कृतियों में काल्पनिकता, संगीतात्मकता तथा रहस्यमय सौंदर्य-दृष्टि पाई जाती है। इनकी रहस्यवादी काव्य कृतियों में प्रकृति और मानवीय हृदय के सूक्ष्म तत्त्वों का संकेत और विवेचन है। प्रकृति के रहस्यों का भी बड़ी सफलता से उद्‌घाटन हुआ है।

ग्राम देवता *कविता में किसान के अतुलनीय त्याग, परिश्रम और कर्मठता का चित्रण करते हुए उसे शत-शत नमन किया गया है। वह विषम से विषंम परिस्थितियों को झेल कर भी स्वयं अभावग्रस्त रहता है और दूसरों को धन-धान्य से परिपूर्ण करता है। किसान सबका पोषक है, इसलिए कवि ने उसे धरती का सच्चा स्वामी बतलाकर महिमामंडित किया है।*

ग्राम-देवता

हे ग्राम-देवता ! नमस्कार !
सोने-चाँदी से नहीं किंतु
तुमने मिट्‌टी से किया प्यार।
हे ग्राम-देवता ! नमस्कार !

जन कोलाहल से दूर
कहीं एकाकी सिमटा-सा निवास,
रवि-शशि का उतना नहीं
कि जितना प्राणों का होता प्रकाश,

श्रम वैभव के बल पर करते हो
जड़ में चेतन का विकास,
दानों-दानों से फूट रहे
सौ-सौ दानों के हरे हास,
यह है न पसीनों की धारा,
यह गंगा की है धवल धार,
हे ग्राम-देवता ! नमस्कार !

अधखुले अंग जिनमें केवल ,
हैं कसे हुए कुछ अस्थि- खंड

जिनमें दधीचि की हड्डी है,
यह वज्र इंद्र का है प्रचंड !
जो है गतिशील सभी ऋतु में
गर्मी-वर्षा हो या कि ठंड
जग का देते हो पुरस्कार
देकर अपने को कठिन दंड !
झोंपड़ी झुकाकर तुम अपनी
ऊँचे करते हो राज - द्वार !
हे ग्राम-देवता ! नमस्कार !

ये राम-श्याम के सरल रूप,
मटमैले शिशु हँस रहे खूब,
ये मुन्ना, मोहन, हरे कृष्ण,
मंगल, मुरली, बच्चू, बिठूव,
इनको क्या चिंता व्याप सकी,
जैसे धरती की हरी दूब
थोड़े दिन में ही ठंड, झड़ी,
गर्मी सब इनमें गई डूब,
ये ढाल अभी से बने
छीन लेने को दुर्दिन के प्रहार !
हे ग्राम-देवता ! नमस्कार !

तुम जन-मन्न के अधिनायक हो
तुम हँसो कि फूले - फले देश
आओ, सिंहासन पर बैठो
यह राज्य तुम्हारा है अशेष !

उर्वरा भूमि के नये खेत के
नये धान्य से सजे वेश,
तुम भू पर रहकर भूमि-भार
धारण करते हो मनुज - शेष,
अपनी कविता से आज तुम्हारी
विमल आरती लूँ उतार !
हे ग्राम-देवता ! नमस्कार !

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. कविता में 'ग्राम-देवता' किसे कहा गया है?
2. कवि ग्राम-देवता को नमस्कार क्यों करता है?
3. जड़ में चेतन का विकास करने का क्या आशय है?
4. किसान-मज़दूर की हड्डियों को इंद्र का वज्र कहने में कवि का क्या संकेत है?
5. कवि की दृष्टि में किसान-मज़दूर जन-मन अधिनायक कैसे हैं?

लिखित

1. किसान-मज़दूर किसके बल पर जड़ में चेतन का विकास करते हैं –
   (क) बुद्धि-चातुर्य
   (ख) श्रम
   (ग) सहनशीलता
   (घ) प्रार्थना।
2. 'इनको क्या चिंता व्याप सकी, जैसे धरती की हरी दूब' पंक्ति की प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए।

3. भाव स्पष्ट कीजिए:

   (क) रवि-शशि का उतना नहीं, कि जितना प्राणों का होता प्रकाश,

   (ख) झोंपडी झुकाकर तुम अपनी, ऊँचे करते हो राज-द्वार।

4 'किसान-मज़दूर का पसीना, पसीना नहीं गंगा की धार है।' इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

योग्यता-विस्तार

(क) 'भारतीय किसान और मज़दूर' विषय पर एक निबंध लिखिए।

(ख) सुमित्रानंदन पंत की 'ग्राम श्री' और 'यह धरती कितना देती है' तथा देवराज दिनेश की 'मज़दूर' कविताओं को पढ़िए और प्रस्तुत कविता से उनकी तुलना कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

हास – प्रसन्नता

हरे-हास – खेती-बाड़ी का आनंद, हरी-भरी फ़सल का आनंद

दधीचि – एक ऋषि, पुराणों के अनुसार वृत्रासुर नामक दैत्य के विनाश के लिए दधीचि की हड्डियों से वज्र नाम का अस्त्र बनाया गया था।

इंद्र – देवताओं के राजा। इंद्र ने ही दधीचि से हड्डियाँ दान करने की प्रार्थना की थी।

अशेष – संपूर्ण

दुर्दिन – बुरे दिन।

बालकृष्ण राव

बालकृष्ण राव का जन्म सन 1913 में उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद नगर मे हुआ। सी. बी. राव के नाम से ये अधिक लोकप्रिय रहे है। इनके पिता देश प्रसिद्ध उदारवादी नेता सर सी.वाइ. चिंतामणि थे। ये बचपन से ही प्रतिभाशाली छात्र थे। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद सन 1937 में बालकृष्ण राव ने आई.सी.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इन्होंने इस प्रतियोगिता परीक्षा मे सारे भारत में प्रथम स्थान प्राप्त किया था। अनेक महत्त्वपूर्ण एवं वरिष्ठ पदों को सँभालने के बाद इन्होने सन 1954 में आई.सी.एस. से त्यागपत्र देकर राजकीय सेवा से निवृत्ति ले ली थी।

बालकृष्ण राव को बचपन से ही काव्य और साहित्य के प्रति अनुराग और रुचि थी। इनकी पहली कविता तत्कालीन श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका 'माधुरी' में प्रकाशित हुई। सन 1931 में इनकी लिखी कविताओं का एक संग्रह 'कौमुदी' नाम से प्रकाशित हुआ। वरिष्ठ सरकारी पद पर प्रतिष्ठित होने के कारण इनकी काव्य साधना अंतर्मुखी-सी हो गई थी। इनकी कविताओं का दूसरा संग्रह 'कवि और छवि' सन 1947 में प्रकाशित हुआ। इस काव्य संग्रह में 'छायावाद' की छाप नज़र आती है। सन 1950-55 तक वे नयी कविता के साथ जुड़ गए थे। हिंदी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ निरंतर प्रकाशित होती रही। इनकी भाषा सरल, सहज, और हृदय पर स्पष्ट छाप छोड़ने वाली है।

बालकृष्ण राव के साहित्यिक योगदान में 'कवि भारती' का संपादन तथा प्रसिद्ध अंग्रेज़ी कवि मिल्टन की काव्य रचना का अनुवाद 'विक्रांत सैम्सन' विशेषरूप से उल्लेखनीय

है। ये अंग्रेजी साहित्य से संबंधित अनेक विषयों और संदर्भों पर निरंतर लिखते रहे हैं। आकाशवाणी के महानिदेशक पद पर रहकर इन्होंने हिंदी के अनेक साहित्यकारों को आकाशवाणी से जोड़ा और उनका सहयोग प्राप्त किया। यह इनके निजी योगदान और रुचि का परिचायक था। सन 1960 में इलाहाबाद से 'कादंबिनी' पत्रिका प्रकाशित हुई, जिसके वे प्रथम संपादक थे। बालकृष्ण राव हिंदी की साहित्यिक गतिविधियों से अनेक रूपों में संबद्ध रहे ये 'सुकवि समाज' के मंत्री, हिंदुस्तानी अकादमी के मंत्री, हिंदी साहित्य संघ, लखनऊ के अध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा के अध्यक्ष, हिंदी साहित्य सम्मेलन के शासी निकाय के सदस्य, तथा साहित्यिक पत्रिका 'माध्यम' के संपादक रहे। सन 1970-72 में वे गोरखपुर विश्वविद्यालय के कुलपति पद पर भी रहे। इनका व्यक्तित्व बहुमुखी था। सन 1975 में इनका देहावसान हुआ।

कौमुदी, आभास, कांच और छवि, रातबीती, हमारी राह, विक्रांत सैम्सन आदि इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ हैं।

बालकृष्ण राव ने सावधान जन-नायक कविता में जन-नायक से अपने प्रशंसकों की झूठी प्रशंसा से बचने का आग्रह किया है, क्योंकि इसमें उसके मनुष्य न रहकर जड़ और पत्थर की मूर्ति बनने का खतरा विद्यमान है।

सावधान, जन-नायक

सावधान, जन-नायक सावधान !
यह स्तुति का सॉप तुम्हें डस न ले।

बचो इन बढ़ी हुई बाँहों से
धृतराष्ट्र मोह- पाश
कही तुम्हें कस न ले।

सुनते हैं कभी, किसी युग में
पाते ही राम का चरण-स्पर्श
शिला प्राणवती हुई।

देखते हैं किंतु आज
अपने उपास्य के चरणों को छू-छूकर
भक्त उन्हें पत्थर की मूर्ति बना देते है।

सावधान, भक्तों की टोली आ रही है
पूजा - द्रव्य लिए !
बचो अर्चना से, फूलमाला से,
अंधी अनुशंसा की हाला से,
बचो वंदना की वंचना से, आत्म रति से,
बचो आत्मपोषण से, आत्मा की क्षति से।

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. जननेता को किससे सावधान रहने को कहा गया है? और क्यों?
2. 'स्तुति का साँप' किसे कहा गया है?
3. कविता में धृतराष्ट्र और अहल्या के संदर्भ क्यों दिए गए हैं?

लिखित

1. राम और अहल्या के प्रसंग आज के नेता और उसके चाटुकारों के प्रसंग से किस प्रकार भिन्न हैं।
2 'वंदना की वंचना', 'आत्मपोषण' और 'अंधी अनुशंसा' कथनों से कवि का क्या आशय है?
3. भाव स्पष्ट कीजिए :

   (क) अपने उपास्य के चरणों को छू-छूकर
   भक्त उन्हें पत्थर की मूर्ति बना देते हैं।

   (ख) बचो वंदना की वंचना से, आत्म रति से,
   बचो आत्मपोषण से, आत्मा की क्षति से।

योग्यता-विस्तार

'आज के युग में सफलता पाने के लिए चाटुकारिता आवश्यक गुण है।' इस विषय पर वाद-विवाद आयोजित कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

मोहपाश — मोह का बंधन
उपास्य — उपासना के योग्य
पूजा द्रव्य — पूजा के लिए सामग्री
अनुशंसा — प्रशंसा
आत्मरति — अपने आपको प्यार करना

वंदना की वंचना	–	वंदना के माध्यम से किसी को छलना या धोखा देना
अंधी अनुशंसा की हाला	–	गुण -अवगुण, योग्यता-अयोग्यता समझे बिना की गई प्रशंसा का नशा
हाला	–	शराब
पोषण	–	देखभाल, पालन
क्षति	–	हानि
धृतराष्ट्र मोह-पाश	–	धृतराष्ट्र हस्तिनापुर का राजा था। अपने दुराचारी पुत्र दुर्योधन के प्रति मोह के कारण वह उसके प्रतिद्वंद्वी भीम को आलिंगन करने के बहाने बाँहों में कसकर चूर-चूर कर देना चाहता था। इसे भाँपकर कृष्ण ने लोहे की मूर्ति का आलिंगन करवाया। अंधे धृतराष्ट्र ने उसे भीम समझकर उसका आलिंगन किया और मूर्ति चूर-चूर हो गई।

पाते ही राम का चरण स्पर्श शिला प्राणवती हुई – शाप के कारण अहल्या पत्थर बन गई थी। राम के चरणों का स्पर्श पाकर वह पुनः जीवित हो गई।

भवानी प्रसाद मिश्र

भवानी प्रसाद मिश्र का जन्म सन 1914 में मध्य प्रदेश में होशंगाबाद के टिमरिया ग्राम में हुआ। सन 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' में उन्होंने सक्रिय भाग लिया। फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने उन्हें तीन वर्ष के लिए कारावास का दंड दिया। इस कारावास का सदुपयोग उन्होंने स्वाध्याय में किया और अंग्रेज़ी के कवि वर्डसवर्थ तथा ब्राउनिंग की रचनाओं का विशेष अध्ययन किया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं से भी वे बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति में कार्य किया और सन 1952-55 तक हैदराबाद से प्रकाशित हिन्दी की लोकप्रिय साहित्यिक पत्रिका 'कल्पना' का संपादन किया। सन 1955-58 के बीच आकाशवाणी के हिंदी कार्यक्रमों से संबद्ध रहे। उन्होंने संपूर्ण गांधी वाड्.मय का संपादन किया और वे गांधी स्मारक निधि से संबद्ध रहे। श्री मिश्र का निधन सन 1985 में हुआ।

मिश्र जी की कविताओं में ऐसी सहजता, सादगी और ताज़गी है, जो पाठकों का हृदय छू लेती है और उन्हें समरस बना देती है। उनके काव्य में बोलचाल का लहज़ा, नाटकीय उतार-चढ़ाव और भाषा का ऐसा प्रवाह है, जो उनकी रचनाओं को सहज संवेद्य बना देता है। उनकी निम्नलिखित पंक्तियों से उनके काव्यादर्श का आभास मिलता है :

जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख,
और उसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख।

मुख्य रचनाएँ– ***गीत-फ़रोश, खुशबू के शिलालेख, चकित है दुख, अँधेरी कविताएँ, बुनी हुई रस्सी, कवितांतर, शतदल, गांधी-पंचशती, त्रिकाल-संध्या*** *आदि।* ***बुनी हुई रस्सी*** *पर उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला है।*

1942 के स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में कारावास में जीवन बिताते हुए मिश्र जी ने एक कविता लिखी थी– ***घर की याद।*** *प्रस्तुत कविता* **पिता** *उसी का एक अंश है जिसमें पिता के भीतरी और बाहरी व्यक्तित्व का सुंदर चित्रण है। कवि सावन द्वारा पिता को संदेश भेज रहा है और आग्रह करता है कि वह पिता को उसके कष्टों के बारे में न बताए। उन्हें सांत्वना दे और ऐसा करे कि वे अपने इस पाँचवे बेटे के लिए तरसने न पाएँ।*

पिता

आज पानी गिर रहा है,
घर नज़र में तिर रहा है,
पिताजी भोले बहादुर,
वज्र - भुज, नवनीत-सा उर।

पिताजी जिनको बुढ़ापा,
एक क्षण भी नहीं व्यापा,
जो अभी भी दौड़ जाएँ,
जो अभी भी खिलखिलाएँ,

मौत के आगे न हिचकें,
शेर के आगे न बिचकें,
बोल में बादल गरजता,
काम में झंझा लरजता।

आज गीता पाठ करके,
दंड दो सौ साठ करके,
जब कि नीचे आए होंगे,
नैन जल से छाए होंगे।

पिताजी का वेश मुझको,
दे रहा है क्लेश मुझको,
देह एक पहाड़ जैसे,
मन कि बड़ का झाड़ जैसे,

एक पत्ता टूट जाए,
बस कि धारा फूट जाए,
एक हलकी चोट लग ले,
दूध की नदी उमग ले,

एक टहनी कम न हो ले
कम कहाँ, कि खम न हो ले
ध्यान कितना, फ़िक्र कितनी,
डाल जितनी जड़ें उतनी।

इस तरह का हाल उनका,
इस तरह का ख्याल उनक
हवा, उनको धीर देना,
यह नहीं जी चीर देना,

हे सजीले हरे सावन,
हे कि मेरे पुण्य पावन,
तुम बरस लो, वे न बरसें,
पाँचवें को वे न तरसें।

मैं मजे में हूँ सही है,
घर नहीं हूँ बस यही है,
किंतु यह बस बड़ा बस है,
इसी बस से सब विरस है,

किंतु उनसे यह न कहना,
उन्हें देते धीर रहना,
उन्हें कहना लिख रहा हूँ,
उन्हें कहना पढ़ रहा हूँ,

कूदता हूँ, खेलता हूँ,
दु:ख डट कर ठेलता हूँ,
और कहना मस्त हूँ मैं,
यों न कहना अस्त हूँ मैं,

कह न देना मौन हूँ मैं,
खुद न समझूँ कौन हूँ मैं,
देखना, कुछ बक न देना,
उन्हें कोई शक न देना,

हे सजीले हरे सावन,
हे कि मेरे पुण्य पावन,
तुम बरस लो, वे न बरसें,
पाँचवें को वे न तरसें।

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. पिता की याद आने का तात्कालिक कारण क्या है?
2. उम्र बड़ी होने पर भी पिता को बुढ़ापा छू तक नही गया है— कवि ने इसके क्या प्रमाण दिए हैं?
3. कवि ने पिता के मन की तुलना किससे की है?
4. 'तुम बरस लो वे न बरसें' कथन का क्या आशय है?
5. कवि अपनी वास्तविक स्थिति को पिता से क्यों छिपाना चाहता है?

लिखित

1. पिता के मन की तुलना बरगद से करने का कारण स्पष्ट कीजिए।
2. कवि सावन से अपने बारे में क्या-क्या बताने का अनुरोध करता है?
3. 'देखना, कुछ बक न देना' के स्थान पर 'देखना कुछ कह न देना' कहा जाता तो कविता के सौंदर्य में क्या अंतर आ जाता?
4. कविता के आधार पर कवि के पिता के व्यक्तित्व का शब्दचित्र खींचिए।

योग्यता-विस्तार

महाकवि कालिदास के 'मेघदूत ' का हिंदी अनुवाद और अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'प्रियप्रवास' का पवन दूती प्रसंग पढ़िए और भेजे गए संदेशों की तुलना प्रस्तुत कविता से कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

तिरना — तैरना
वज्रभुज — बलिष्ठ भुजाओ वाले, शक्तिशाली
नवनीत-सा — मक्खन-सा कोमल
बड़ का झाड़ — बरगद का वृक्ष
खम — टेढ़ापन
विरस — नीरस, बेस्वाद

नागार्जुन

नागार्जुन का जन्म दरभंगा (बिहार) के सतलखा गाँव में सन 1911 में हुआ। उनका पूरा नाम वैद्यनाथ मिश्र था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा स्थानीय संस्कृत पाठशाला में हुई। सन 1936 में वे श्रीलंका गए और वहाँ उन्होंने बौद्ध धर्म में दीक्षा ली। सन 1938 में वे स्वदेश लौट आए।

नागार्जुन ने संपूर्ण भारत का कई बार भ्रमण किया। उनके व्यक्तित्व में घुमक्कड़ी और अक्खड़पन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वे एक स्थान पर टिककर काम नहीं कर पाए। नागार्जुन ने मैथिली और हिंदी दोनों भाषाओं में रचनाएँ की। वे अपनी मातृभाषा मैथिली में 'यात्री' नाम से लिखते थे। बांग्ला और संस्कृत में भी उन्होंने कविताएँ लिखी हैं। उन्होंने सन 1935 में ***दीपक*** *(हिन्दी मासिक) और 1942-43 में* ***विश्वबंधु*** *(हिन्दी साप्ताहिक) का संपादन किया। नागार्जुन राजनीतिक गतिविधियों से भी जुड़े रहे और इस सिलसिले में उन्हें कई बार जेल-यात्रा भी करनी पड़ी। साहित्य-सेवा के लिए उन्हें कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया।*

नागार्जुन साहित्य और राजनीति दोनों में समान रूप से रुचि रखने वाले प्रगतिशील साहित्यकार थे। वे धरती, जनता और श्रम के गीत गाने वाले संवेदनशील कवि थे। कबीर की-सी सहजता उनके काव्य की विशेषता है। उनकी भाषा में ऊबड़-खाबड़पन और चट्टान की-सी मज़बूती है। सामयिक बोध उनकी कविता का प्रधान स्वर है। उनकी रचनाओं में तीखा व्यंग्य पाया जाता है। उनकी रचनाओं का जनता से जीवंत संपर्क है। उन्होंने कई

आंदोलन धर्मी कविताएँ भी लिखी हैं जिन्हें 'पोस्टर कविता' कहा जाता है। वे अच्छे उपन्यासकार भी थे। सन 1998 में उनका देहांत हो गया।

मुख्य रचनाएँ– ***युगधारा, प्यासी पथराई आँखें, सतरंगे पंखों वाली, तालाब की मछलियाँ, हज़ार-हज़ार बाँहों वाली, तुमने कहा था, पुरानी जूतियों का कोरस, ऐसा क्या कह दिया मैंने, रत्नगर्भा, ऐसे भी हम क्या ऐसे भी तुम क्या, भस्मांकुर*** *(खंड काव्य)।*

फ़सल *कविता में संकेत है कि नदियों के पानी, लाखों किसानों के श्रम, मिट्टी के गुण-धर्म, सूरज की किरणों और हवा की थिरकन से ही फ़सल तैयार होती है।*

उनको प्रणाम *कविता में कवि सफल महापुरुषों, वीरों को नहीं, बल्कि उन्हें प्रणाम करता है जिन्होंने संघर्ष किया, जो साधन चुक जाने पर भी डटे रहे, जो देश के लिए फाँसी के फंदे से झूल गए और जो प्रचार और विज्ञापनों से दूर एकाकी जीवन जीते रहे।*

(क) फ़सल

एक के नहीं
दो के नहीं
ढेर सारी नदियों के पानी का जादू:
एक के नहीं
दो के नहीं
लाख-लाख कोटि-कोटि हाथों-हाथों के स्पर्श की गरिमा:
एक के नहीं
दो के नहीं
हज़ार-हज़ार खेतों की मिट्टी का गुण-धर्म :

फ़सल क्या है?

और तो कुछ नहीं है वह
नदियों के पानी का जादू है
हाथों के स्पर्श की महिमा है
भूरी-काली-संदली मिट्टी का गुण-धर्म है
रूपांतर है सूरज की किरणों का
सिमटा हुआ संकोच है हवा की थिरकन का !

(ख) उनको प्रणाम !

जो नही हो सके पूर्ण-काम
मैं उनको करता हूँ प्रणाम !

कुछ कुंठित औ कुछ लक्ष्य-भ्रष्ट
जिनके अभिमंत्रित तीर हुए ;
रण की समाप्ति के पहले ही
जो वीर रिक्त तूणीर हुए !
— उनको प्रणाम !

जो छोटी-सी नैया लेकर
उतरे करने को उदधि-पार;
मन की मन में ही रही, स्वयं
हो गए उसी में निराकार !
— उनको प्रणाम !

जो उच्च शिखर की ओर बढ़े
रह-रह नव-नव उत्साह भरे;
पर कुछ ने ले ली हिम-समाधि
कुछ असफल ही नीचे उतरे !
—उनको प्रणाम !

एकाकी और अकिंचन से,
जो भू- परिक्रमा को निकले;
हो गए पंगु, प्रति-पद जिनके
इतने अदृष्ट के दाँव चले !
— उनको प्रणाम !

कृतकृत्य नहीं जो हो पाए,
प्रत्युत फाँसी पर गए झूल;
कुछ ही दिन बीते हैं, फिर भी
यह दुनिया जिनको गई भूल !
— उनको प्रणाम !

थी उग्र साधना, पर जिनका
जीवन नाटक दुखांत हुआ;
था जन्म-काल में सिंह लग्न
पर कुसमय ही देहांत हुआ !
— उनको प्रणाम !

दृढ़ व्रत औ दुर्दम साहस के
जो उदाहरण थे मूर्तिमंत;
पर निरवधि बंदी जीवन ने
जिनकी धुन का कर दिया अंत !
— उनको प्रणाम !

जिनकी सेवाएँ अतुलनीय,
पर विज्ञापन से रहे दूर;
प्रतिकूल परिस्थिति ने जिनके
कर दिए मनोरथ चूर-चूर !
— उनको प्रणाम !

प्रश्न-अभ्यास

(क) फ़सल

मौखिक

1. फ़सल को नदियो के पानी का जादू क्यो कहा गया है ?
2. फ़सल मिट्टी का गुण-धर्म कैसे है ?
3. हवा के चलने से फ़सल लाज से सिमटी प्रतीत होती है– यह भाव किस पंक्ति में व्यक्त हुआ है ?
4. फ़सल के तैयार होने में किन-किन का योगदान है ?

लिखित

1. कवि ने फ़सल को किन-किन के हाथों की महिमा-गरिमा कहा है और क्यों ?
2. फ़सल को सूरज की किरणों का रूपांतरण क्यों कहा गया है ?
3. भाव स्पष्ट कीजिए :
   रूपांतर है सूरज की किरणों का –
   सिमटा हुआ संकोच है हवा की थिरकन का !

योग्यता-विस्तार

केदारनाथ अग्रवाल की कविता 'बसंती हवा' पढ़िए और उन पंक्तियों को चुनिए जिनका भाव इस कविता के भाव से मिलता हो ।

(ख) उनको प्रणाम

मौखिक

1. युद्धक्षेत्र में संघर्ष करते हुए जो साधनों के अभाव में विजय से पूर्व ही मारे गए, कवि उनको प्रणाम करता है, क्यो ?
2. कवि उनको प्रणाम क्यों करता है जो सागर पार करने के प्रयत्न में उसी में डूब गए ?
3. उन पंक्तियों को बताओ जिनमें कवि ने देश के शहीदों को प्रणाम किया है ?
4. ऊँचे शिखरों पर चढ़ने में असफल लोगों को कवि क्यों प्रणाम करता है ?

लिखित

1. प्रायः सफल व्यक्तियों को ही प्रणाम किया जाता है परंतु कवि ने इस कविता में असफल व्यक्तियों को ही प्रणाम किया है, क्यों ?

2. भाव स्पष्ट कीजिए :

(क) एकाकी और अकिंचन से, जो भू-परिक्रमा को निकले,
हो गए पंगु, प्रति-पद जिनके, इतने अदृष्ट के दॉव चले !

(ख) दृढ़ व्रत औ दुर्दम साहस के, जो उदाहरण थे मूर्तिमंत,
पर निरवधि बंदी जीवन ने, जिनकी धुन का कर दिया अंत !

योग्यता-विस्तार

कुछ ऐसे व्यक्तियों के नाम बताइए-

(क) जो उच्च शिखर की ओर बढ़े, किंतु असफल रहे ।
(ख) जो देश के हित के लिए फाँसी पर झूल गए ।
(ग) जो दृढ़व्रत और दुर्दम साहस की प्रतिमूर्ति थे ।
(घ) जो उग्र साधना में लीन रहे और असमय ही मृत्यु को प्राप्त हुए ।
(ङ) जो राष्ट्र और समाज के सेवक थे, किंतु प्रचार से दूर रहे ।

शब्दार्थ और टिप्पणी

(क) फ़सल

गुणधर्म	–	विशेषता, लक्षण
संदली	–	चंदन के समान रंग वाली, चंदनवर्णी

(ख) उनको प्रणाम

पूर्णकाम	–	सफल, जिनकी कामनाएँ पूर्ण हो गई हों
कुंठित	–	अधूरी या दबी इच्छाओं से उत्पन्न मन की स्थिति
अभिमंत्रित	–	मंत्रों द्‌वारा पवित्र किया हुआ
रिक्त तूणीर	–	खाली तरकश
निरवधि बंदी जीवन	–	जिनके बंदी जीवन की कोई अवधि न थी
सिंह लग्न	–	ज्योतिष के अनुसार सिंह लग्न में जन्म लेने वाला स्वस्थ, वीर और दीर्घायु होता है
हिम-समाधि लेना	–	बरफ़ में दबकर मर जाना
अकिंचन	–	दरिद्र, साधनहीन
कृतकृत्य होना	–	अपना कार्य पूरा कर चुकने की भावना, सफल मनोरथ होना।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

'अज्ञेय' जी का वास्तविक नाम सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन है। उनका जन्म कुशीनगर (उत्तर प्रदेश) में सन 1911 में हुआ। 'अज्ञेय' का बचपन लखनऊ, श्रीनगर और जम्मू में व्यतीत हुआ। प्रारंभ में वे विज्ञान के विद्‌यार्थी थे, किंतु बाद में साहित्य में रुचि होने के कारण अंग्रेज़ी विषय में एम.ए. की पढ़ाई करते समय क्रांतिकारी आंदोलन के सिलसिले में फ़रार हुए और उन्हें सन 1930 के अंत में पकड़ लिया गया। वे चार वर्ष जेल में और दो वर्ष नज़रबंद रहे।

उन्होंने अपने जीवन में अनेक नौकरियाँ कीं, जिनमें फौज की सेवा भी शामिल है। 'अज्ञेय' जी ने देश-विदेश की अनेक यात्राएँ कीं। 'सैनिक' में पत्रकार के रूप में उन्होंने कार्य किया। 'विशाल भारत', 'प्रतीक', 'दिनमान', 'नवभारत टाइम्स' तथा 'नया प्रतीक' का संपादन किया।

उनकी प्रारंभिक शिक्षा संस्कृत, अंग्रेज़ी और हिंदी में हुई। इसीलिए वे संस्कृतनिष्ठ परंपरा में पले पाश्चात्य संस्कारों के अभिजातवर्गीय कवि माने जाते हैं। उनकी काव्य-वस्तु में ही नहीं, बल्कि उनके काव्य-शिल्प में भी सुरुचि और शालीनता प्रकट होती है। उनका काव्य और उनका व्यक्तित्व बहुत ही व्यवस्थित रहा है। वे हिंदी के प्रबुद्‌ध कवि थे। अज्ञेय का देहावसान सन 1987 में हुआ।

उनकी मुख्य काव्य कृतियाँ हैं— ***भग्नदूत, चिंता, इत्यलम, हरी घास पर क्षण भर, बावरा अहेरी, इंद्रधनु रौंदे हुए, अरी ओ करुणा प्रभामय, आँगन के पार द्‌वार,***

सागर मुद्रा, तार सप्तक, दूसरा सप्तक, तीसरा सप्तक *और* ***चौथा सप्तक*** *आदि। इनके अतिरिक्त अज्ञेय ने अनेक उपन्यास, कहानियाँ, ललित निबंध, यात्रा-विवरण आदि भी लिखे हैं जिनमें प्रमुख हैं–****आत्मनेपद, विपथगा, नदी के द्‌वीप, शेखर : एक जीवनी, अरे यायावर याद रहेगा, एक बूँद सहसा उछली*** *आदि।*

अज्ञेय हिंदी में प्रयोगवाद और नयी कविता के प्रवर्तक माने जाते हैं। उनकी प्रारंभिक रचनाओं में वैयक्तिकता के स्वर की प्रधानता है और उनमें छायावादी आवेग की झलक भी मिलती है, किंतु धीरे-धीरे कवि वैयक्तिकता के घेरे को तोड़ता चलता है और यथार्थवादी भाव-बोध तथा निर्वैयक्तिकता को अपनी कविता का आदर्श बनाता है। अज्ञेय जीवन के विविध अनुभवों के धनी हैं, अतः उनकी रचनाओं में लौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति से लेकर प्रकृति के विविध रूपों के चित्रण के साथ बौद्‌ध दर्शन, महाशून्यवाद तक की अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंने शब्दों को माँजकर उनमें सटीक अर्थ भरने का प्रयास किया है। निष्कर्षतः अज्ञेय उन साहित्य निर्माताओं में से हैं, जिन्होंने आधुनिक हिंदी साहित्य को एक नई दिशा दी, एक नया मान दिया।

मेरे देश की आँखें *कविता में कवि ग्रामीण और वनांचल के नैसर्गिक सौंदर्य को ही भारतीय सौंदर्य का प्रतिमान मानता है। तनाव, घृणा जैसे भावों को छिपाने के लिए प्रसाधन सामग्री से सजी आँखों को नहीं।*

मेरे देश की आँखें

नहीं, ये मेरे देश की आँखें नही हैं
पुते गालों के ऊपर
नकली भवों के नीचे
छाया प्यार के छलावे बिछाती
मुकुर से उठाई हुई
मुसकान मुसकराती
ये आँखें —
नहीं, ये मेरे देश की नहीं हैं..........

तनाव से झुर्रियाँ पड़ी कोरों की दरार से
शरारे छोड़ती घृणा से सिकुड़ी पुतलियाँ—
नही, वे मेरे देश की आँखें नहीं हैं .....

वन डालियों के बीच से
चौंकी अनपहचानी
कभी झाँकती हैं वे आँखें,
मेरे देश की आँखें,
खेतों के पार

मेड़ की लीक धारे
क्षिति-रेखा को खोजती
सूनी कभी ताकती हैं
वे आँखें ....

उसने
झुकी कमर सीधी की
माथे से पसीना पोंछा
डलिया हाथ से छोड़ी
और उड़ी धूल के बादल के

बीच में से झलमलाते
जाड़ों की अमावस में से
मैले चाँद-चेहरे सकुचाते
में टँकी थकी पलकें
उठाई –
और कितने काल-सागरों के पार तैर आई
मेरे देश की आँखें ....

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. 'मुकुर से उठाई हुई मुसकान' का क्या आशय है?
2. घृणा और तनाव से भरी आँखों को कवि अपने देश की आँखें क्यों नही मानता?
3. तरुशाखाओं के बीच झाँकती अनपहचानी-सी आँखें किसकी हैं?

4. 'क्षिति-रेखा' खोजती आँखों को 'सूनी' कहना क्या सूचित करता है?
5. कवि के अनुसार देश की आँखों की वास्तविक पहचान क्या है?

लिखित

1. कवि ने कैसी आँखों को अपने देश की आँखें नहीं माना है?
2. ग्रामीण या वनांचलों से झाँकती आँखों को 'चौंकी', 'अनपहचानी' क्यों कहा है?
3. युवतियों के कृत्रिम सौंदर्य का चित्रण कविता के आधार पर कीजिए।
4. कौन-सा कथन 'मेरे देश की आँखों' की विशेषता बताता है?
    - क. शरारे छोड़ती
    - ख. मुसकान बिखेरती
    - ग. क्षिति-रेखा को खोजती
    - घ. घृणा से सिकुड़ी

योग्यता-विस्तार

प्रसाधन-सामग्री से सज्जित सौंदर्य की अपेक्षा नैसर्गिक सौंदर्य कहीं अधिक मोहक होता है– इस विषय पर परिचर्चा कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

छलावा – भ्रम
मुकुर – दर्पण
शरारे – चिंगारियाँ
क्षिति-रेखा – क्षितिज।

केदारनाथ सिंह

केदारनाथ सिंह का जन्म सन 1934 में बलिया ज़िले के चकिया गाँव में हुआ। काशी हिंदू विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए. करने के बाद उन्होंने वहीं से 1964 में 'आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान' विषय पर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। संप्रति वे जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा केन्द्र में हिंदी के प्रोफ़ेसर के पद से अवकाश प्राप्त कर चुके हैं।

केदारनाथ सिंह मूलतः मानवीय संवेदनाओं के कवि हैं। अपनी कविताओं में उन्होंने बिंब-विधान पर अधिक बल दिया है। 'तीसरा सप्तक' के अपने वक्तव्य में उन्होंने कहा है, "प्रकृति बहुत शुरू से मेरे भावों का आलंबन रही है। कछार, मक्का के खेत और दूर-दूर तक फैली पगडंडियों की छाप आज भी मेरे मन पर उतनी ही स्पष्ट है— समाज के प्रगतिशील तत्त्वों और मानव के उच्चतर मूल्यों की परख मेरी रचनाओं में आ सकी है या नहीं, मैं नहीं जानता पर उनके प्रति मेरे भीतर एक विश्वास, एक लालसा, एक लपट ज़रूर है जिसे मैं हर प्रतिकूल झोंके से बचाने की कोशिश करता हूँ, करता रहूँगा।"

केदारनाथ सिंह की कविताओं में शोर-शराबा न होकर, विद्रोह का शांत और संयत स्वर सशक्त रूप से उभरता है। संवेदना और विचारबोध उनकी कविताओं में साथ-साथ चलते हैं। जीवन के बिना प्रकृति और वस्तुएँ कुछ भी नहीं हैं— यह अहसास उन्हें अपनी कविताओं में आदमी के और समीप ले आया है। उनकी कविताओं में दैनिक जीवन के अनुभव परिचित बिंबों में बदलते दिखाई देते हैं। शिल्प में बातचीत की सहजता और अपनापन अनायास ही दृष्टिगोचर होता है। ***अकाल में सारस*** *कविता संग्रह पर उनको सन*

1989 में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया। सन 1994 में मध्य प्रदेश शासन की ओर से मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रीय सम्मान दिया गया । उन्हें अन्य कई सम्मानों से भी सम्मानित किया गया है।

*अब तक केदारनाथ सिंह के छह काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं : **अभी बिल्कुल अभी, जमीन पक रही है, यहाँ से देखो, अकाल में सारस, उत्तर कबीर तथा अन्य कविताएँ,** और **बाघ।** **कल्पना और छायावाद** उनकी आलोचनात्मक पुस्तक और **मेरे समय के शब्द** निबंध संग्रह है। हाल ही में उनकी चुनी हुई कविताओं का संग्रह **प्रतिनिधि कविताएँ** नाम से प्रकाशित हुआ है।*

***अकाल में दूब** कविता में अकाल के विभिन्न दृश्यों के माध्यम से हताशा के बीच दूब के प्रतीक के ज़रिये आशावाद को अभिव्यंजित किया गया है। धरती में अपनी गहरी जड़ों के कारण जिस तरह दूब नहीं मरती, ठीक उसी तरह मनुष्य भी अपनी इच्छाशक्ति से एक न एक दिन संकट से उबर जाता है। धैर्य, साहस और विनम्रता इन तीन गुणों से मानव ने विपरीत स्थितियों में सदैव सफलता पाई है।*

अकाल में दूब

भयानक सूखा है
पक्षी छोड़कर चले गए हैं
पेड़ों को
बिलों को छोड़कर चले गए हैं चींटे
चींटियाँ
देहरी और चौखट
पता नहीं कहाँ-किधर चले गए हैं
घरों को छोड़कर

भयानक सूखा है
मवेशी खड़े हैं
एक-दूसरे का मुँह ताकते हुए

कहते हैं पिता
ऐसा अकाल कभी नहीं देखा
ऐसा अकाल कि बस्ती में
दूब तक झुलस जाए
सुना नहीं कभी

दूब मगर मरती नहीं —
कहते हैं वे
और हो जाते हैं चुप

निकलता हूँ मैं
दूब की तलाश में
खोजता हूँ परती-पराठ
झाँकता हूँ कुँओं में
छान डालता हूँ गली-चौराहे
मिलती नहीं दूब

मुझे मिलते हैं मुँहबाए घड़े
बाल्टियाँ लोटे परात
झाँकता हूँ घड़ों में
लोगों की आँखों की कटोरियों में
झाँकता हूँ मैं
मिलती नहीं
मिलती नहीं दूब

अंत में
सारी बस्ती छानकर
लौटता हूँ निराश
लाँघता हूँ कुँए के पास की
सूखी नाली
कि अचानक मुझे दिख जाती है
शीशे के बिखरे हुए टुकड़ों के बीच

एक हरी पत्ती
दूब है
हाँ-हाँ दूब है—
पहचानता हूँ मैं

लौटकर यह खबर
देता हूँ पिता को
अँधेरे में भी
दमक उठता है उनका चेहरा
'है— अभी बहुत कुछ है
अगर बची है दूब...'
बुदबुदाते हैं वे

फिर गहरे विचार में
खो जाते हैं पिता।

प्रश्न-अभ्यास

मौखिक

1. चींटियाँ और पक्षी अपने घरों को छोड़कर क्यों चले गए?
2. इस अकाल में ऐसी क्या बात थी कि पिता को कहना पड़ा— ऐसा अकाल कभी नहीं देखा?
3. कविता में दूब का उल्लेख बार-बार क्यों हुआ है?
4. कविता के किस अंश से ज्ञात होता है कि कठिन और विकट परिस्थितियों में भी जीवन बचा रह सकता है?

लिखित

1. अकाल की भयावहता का जो चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है उसे अपने शब्दों में व्यक्त कीजिए।
2. शीशे के टुकड़े किन परिस्थितियो के द्योतक हैं?
3. निराशा के अंधकार में भी पिता का चेहरा क्यों दमकता है?
4. भाव सौंदर्य स्पष्ट कीजिए :

   (क) मुझे मिलते हैं मुँहबाए घड़े
   बाल्टियाँ लोटे परात
   झाँकता हूँ घड़ों में
   लोगों की आँखों की कटोरियों में

   (ख) 'है – अभी बहुत कुछ है
   अगर बची है दूब–'

योग्यता-विस्तार

'जीने की उत्कट इच्छा के सामने सभी कठिनाइयाँ छूमंतर हो जाती हैं।' इस विषय पर कक्षा में परिचर्चा कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

देहरी – दरवाज़े की चौखट का फ़र्श से लगा भाग, दहलीज़
परती-पराठ – सूखी बंजर और पथरीली भूमि
मुँहबाए – मुँह खोले हुए।

दुष्यंत कुमार

दुष्यंत कुमार का जन्म ज़िला बिजनौर (उ.प्र.) के राजपुर नवादा नामक ग्राम के एक कृषक परिवार में सन 1933 में हुआ था। उनके बचपन का नाम दुष्यंत नारायण था।

दुष्यंत कुमार ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए. किया। उनके साहित्यिक जीवन का आरंभ इलाहाबाद से ही हुआ। उन्होंने 'परिमल' की गोष्ठियों में सक्रिय रूप से भाग लिया और 'नए पत्ते' जैसे महत्त्वपूर्ण पत्र से जुड़े रहे। दुष्यंत कुमार ने अपनी आजीविका के लिए आकाशवाणी में नौकरी की और देश के अनेक आकाशवाणी केंद्रों पर हिंदी कार्यक्रमों को सँभालने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। बाद में सहायक निदेशक के रूप में मध्य प्रदेश के भाषा विभाग से जुड़ गए। केवल तैंतालीस वर्ष की अल्पायु में सन 1975 में उनका देहावसान हो गया।

दुष्यंत कुमार का लेखन सहज और स्वाभाविक था, जिससे उन्हें लोकप्रियता प्राप्त हुई। हिंदी कविता में गीत और गज़ल लिखने में दुष्यंत कुमार का कोई सानी नहीं था। उन्होंने कविता के क्षेत्र में कई नए प्रयोग किए। किंतु उनकी विशिष्ट देन है, हिंदी गज़ल। अपनी गज़लों के बारे में उन्होंने लिखा है, 'मैं स्वीकार करता हूँ कि गज़ल को किसी भूमिका की जरूरत नहीं होती ..... मैं प्रतिबद्ध कवि हूँ .... यह प्रतिबद्धता किसी पार्टी से नही, आज के मनुष्य से है और मैं जिस आदमी के लिए लिखता हूँ, यह भी चाहता हूँ कि वह आदमी उसे पढ़े और समझे।'

*दुष्यंत कुमार मूलतः कवि थे किंतु उन्होंने उपन्यास और नाटक विधा में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। '**एक कंठ विषपायी**' दुष्यंत कुमार का एक महत्त्वपूर्ण गीति-नाट्य है।*

*मुख्य काव्य रचनाएँ– **सूर्य का स्वागत, आवाज़ों के घेरे, साये में धूप, जलते हुए वन का वसंत** आदि।*

*उपन्यास– **छोटे-छोटे सवाल, आंगन में एक वृक्ष, दोहरी ज़िंदगी**।*

गज़ल हिंदी कविता की नई विधा है। गज़ल का शेर तुक-तान में एक ही गज़ल का अंश होते हुए भी अपने आप में एक स्वतंत्र इकाई होता है। फिर भी पूरी गज़ल में एक संदेश होता है। दुष्यंत कुमार की इन दोनों गज़लों में वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन की आवश्यकता पर बल दिया गया है। मनुष्य में अगर कुछ करने और समाज में बदलाव लाने की भावना हो तो वह अकेले भी बहुत कुछ कर सकता है। इस तरह वह बेहतर जीवन के लिए दूसरों को भी प्रेरणा दे सकता है। मनुष्य को सामाजिक बाधाओं से कभी हताश नहीं होना चाहिए। जीवन के यथार्थ को समझकर जो लोग बिना घबराए आगे बढ़ते हैं, वे ही सफल होते हैं। कवि कल्पनाओं में जीने की अपेक्षा सच्चाई का सामना करने का परामर्श देता है।

(क) मेरे गीत तुम्हारे पास

मेरे गीत तुम्हारे पास सहारा पाने आएँगे,
मेरे बाद तुम्हें ये मेरी याद दिलाने आएँगे।

थोड़ी आँच बची रहने दो, थोड़ा धुआँ निकलने दो,
कल देखोगी कई मुसाफ़िर इसी बहाने आएँगे।

उनको क्या मालूम विरूपित इस सिकता पर क्या बीती,
वे आये तो यहाँ शंख सीपियाँ उठाने आएँगे।

रह-रह आँखों में चुभती है पथ की निर्जन दोपहरी,
आगे और बढ़े तो शायद दृश्य सुहाने आएँगे।

मेले में भटके होते तो कोई घर पहुँचा जाता,
हम घर में भटके हैं, कैसे ठौर-ठिकाने आएँगे।

हम क्या बोलें इस आँधी में कई घरौंदे टूट गए,
इन असफल निर्मितियों के शव कल पहचाने जाएँगे।

(ख) दीवारें न देख

आज सड़कों पर लिखे हैं सैकड़ों नारे न देख,
घर अँधेरा देख तू, आकाश के तारे न देख।

एक दरिया है यहाँ पर दूर तक फैला हुआ,
आज अपने बाज़ुओं को देख, पतवारें न देख।

अब यकीनन ठोस है धरती हकीकत की तरह,
यह हकीकत देख, लेकिन खौफ़ के मारे न देख।

वे सहारे भी नहीं अब, जंग लड़नी है तुझे,
कट चुके जो हाथ, उन हाथों में तलवारें न देख।

दिल को बहला ले, इजाज़त है, मगर इतना न उड़,
रोज़ सपने देख, लेकिन इस कदर प्यारे न देख।

ये धुँधलका है नज़र का, तू महज़ मायूस है,
रोज़नों को देख, दीवारों में दीवारें न देख।

राख, कितनी राख है, चारों तरफ़ बिखरी हुई,
राख में चिनगारियाँ ही देख, अंगारे न देख।

प्रश्न-अभ्यास

(क) मेरे गीत तुम्हारे पास

मौखिक

1. प्रस्तुत कविता किसको संबोधित है?
2. किस शेर में यह भाव व्यंजित हुआ है कि लोगों को फल से सरोकार होता है फल पाने की प्रक्रिया की कठिनाइयों से नहीं।
3. सुहाने दृश्यों को देखने की इच्छा रखने वालों को किस बात की परवाह नहीं करनी चाहिए?
4. रचनाओं के अधूरे और असफल होने पर भी निराश होने की ज़रूरत नहीं है— यह भाव कविता की किन पंक्तियों से व्यक्त होता है?

लिखित

1. कवि जीवन में ऊष्मा और प्राणशक्ति शेष बचा रखने का आग्रह क्यों करता है?
2. शंख-सीपियाँ उठाने वाले को रेत-बालू द्वारा झेले गए कष्टों का पता नहीं है। ऐसा कवि ने क्यों कहा?.
3. 'मेले में भटके' और 'घर में भटके' से कवि का क्या आशय है?
4. 'घर में भटके' के लिए ठौर-ठिकाना पाना क्यों कठिन है?

योग्यता-विस्तार

'साये में धूप' पुस्तक में दुष्यंत की ग़ज़लों का संग्रह हुआ है। उसमें से अपनी पसंद की ग़ज़लों का चयन कीजिए और कक्षा में सुनाइए।

(ख) दीवारें न देख

मौखिक

1. कवि सड़कों पर लिखे नारों और आकाश के तारों को देखने को क्यों मना करता है?
2. कविता की किन पंक्तियों में स्वावलंबी बनने की सलाह दी गई है?
3. कवि किस सीमा तक सपने देखने की इजाज़त देता है?

लिखित

1. लोग ज़िंदगी की हकीकत से क्यों डरते हैं? जीवन की वास्तविकताओं का सामना कैसे किया जाना चाहिए?
2. कवि राख में चिनगारी ही देखने का आग्रह क्यों करता है, अंगारे देखने को क्यों मना करता है?
3. भाव स्पष्ट कीजिए :
   (क) रोज़नों को देख, दीवारों में दीवारें न देख।
   (ख) राख में चिनगारियाँ ही देख, अंगारे न देख।

योग्यता-विस्तार

हरिवंश राय बच्चन की 'पूर्व चलने के बटोही बाट की पहचान कर ले' कविता को पढ़िए और इस कविता से उसकी तुलना कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

(क) मेरे गीत तुम्हारे पास

विरूपित – शोभारहित, बिगड़े रूप-रंग वाली
निर्मिति – रचना

(ख) दीवारें न देख

मायूस – निराश
रोज़न – सूराख, रोशनदान।